ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक — १८६

सम्पादक एवं नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन

अनुक्रम

बीजुरी
काजल आँज रही
✿

१

गगन की रानी के चुप-चुप बीजुरी काजल आँज रही
बादलों के घिर आने से प्रात भी अच्छी साँझ रही।

साँवली और कुआँरी-सी मगन माटी ने खोले केश
गोद पर लहर-लहर आये विविध रंगों के हिलते वेश।

छू उठी, छुपा हृदय गुमनाम, तुम्हारी निखरी-सी पहचान
और वे मृग-तृष्णा हो गये तुम्हारी यादों के मेहमान।

मधुर निर्यात और आयात, साधते हो दोनों के खेल
छलक में निकल चले-से दूर पलक में पल पल बढ़ता मेल।

तुम्हारे खो जाने में दुःख, तुम्हारे पा जाने में आज —
भूमि का मिल जाता है छोर, गगन का मिल जाता है राज।

तुम्हारी डोरें हरस रहीं, बेलि पर सपने साज रहीं
गगन की रानी के चुप-चुप बीजुरी काजल आँज रही।

२

फुदक-फुदक लहरें सागर की छोरियाँ
पानी की बलहीन पागल मुँहजोरियाँ
दौड़-दौड़, फैल-फैल, डुबो-डुबो सपने
सीपों में भर-भर कुछ उनके, कुछ अपने

कितना बल खाती है, कैसी इठलाती है
चट्टानें आती हैं, कैसी पछाड़ खाती है!

कैसे मैं इन्हें दूँ प्यार, कैसे मैं इन्हें दूँ धीर
खड़ी हैं ये पानी के आवरण चीर-चीर
इनका दिलदार चाँद जिस दिन आयेगा
ऊँची उठा किरणों से गले मिल जायेगा;

तब तक बावली-सी लौट-लौट आना है
छन मुसकाना है, पल-पल पछाड़ खाना है।



३

किस-किस छवि पर मैं आज धरा का रंग वार दूँ
किस चन्द्र-गन्ध की, दौड़ पड़ूँ, नज़रें उतार दूँ ?

कैसी है यह छटा
कि स्वर-स्वर पैठा अर्थ मिल कर आता है
कितने डोरे खुले
कि कितने बँधे, गान है, शरमाता है।

मैं छवि के संकेत वायु में गूँथ कर
अर्थों को पके आम-सा थोड़ा मथ कर
नीरस अंगुलियाँ चला रहा हूँ ऐसे
अर्थमयी-सी हो जायेगी करनी जैसे !

ठहरूँ ? क्या बात करूँ
दिन कैसे रात करूँ,
मेघ झूम आये हैं।
रिमझिम-रिमझिम बरसन
यह मरोर यह थिरकन
कितने अलसाये हैं ?

विन्ध्या ने करते हुए अनन्त टटोली
सुन्दरता की नव-गाँठ धरा पर खोली।

उतर रहे हैं रंग शैल पर
किसे प्यार दूँ
किस-किस छवि पर आज धरा के रंग वार दूँ ?



४

स्मृति की लडियाँ लटकी नयनो के द्वार पर
इन्द्रधनुष बन आये द्रव अगार पर।
बचना चाहा किन्तु न बच पायीं यादें
उतर पडे कुछ शब्द मेरे शृङ्गार पर।

उठी इरादों-सी सागर की पातियाँ
गिरि, वन, निर्झर, ग्राम, नगर को पार कर,
मानो हिलते-डुलते वन्दनवार ये
लगा भूमि ने दिये क्षितिज के द्वार पर।

बिजली लिपट-लिपट जाती घनश्याम में
कितना कुन्दन बिखर रहा बौछार पर,
ये बोलों के मोल पक्षिगण गा उठे
स्वागत यह, किरणों के राजकुमार पर।

चरण धुलाने दो लहरों की धार में
सावन आया नदियों के आकार मे।



५

बीत गया आषाढ़ कि अगिया झूल रहीं
अपना त्याग दिशा-विदिशा में भूल रहीं।

गरज उठे अमर इरादे आग के
बरस-बरस आये हैं घर घनश्याम के।

खिलखिला बूँदों की आँख-मिचौनी पर
भीग-भीग उठती इस गति अनहोनी पर।

पत्थर पानी हो पड़ता है चाव से
बरस-बरस आये हैं विधि के दाव से।

हाथी-हाथी डोरें डाल रहा पानी
किसे छोड़ने, किसे बाँधने की ठानी?

उत्तर से दौड़ बरसेंगे दक्षिण में
पैया दूखें नहीं अनन्त प्रदक्षिण में।

चाँदनियों के तार सूत के टूट गये
धागाएँ तारों को बाँधें नये-नये।

हम बादल में, बादल हम से दूर हैं
किरणों वाले चन्दा से मजबूर हैं।



६

विवश कमानी-सा झुक आया इन्द्रधनुष रगो का गहरा
मैदानों की हथेलियों पर ठहरा देखो मेरा पहरा !
नपी-तुली-सी फैल रही है मिली-जुली क्षितिजों की रेखा
अभी-अभी है, अभी नहीं है, देखा लगता है अनदेखा।

भू की हथेलियों पर किसने पगडण्डी की रेखा खींची
कितना विस्तृत बँधा सडक से, कितनी स्मृति ने आँखें मीचीं।
नज़रें लग-लग सो जाती है बिन पैताने, बिन सिरहाने
जेलों में आ गयीं लडकियाँ और पा गयीं पलग पुराने।

हरियाली के झूमर-झालर लटक उठे है, नभ बन आया
आयेंगे अब सूरज-चन्दा, चमकीली ऋतुओं की माया।
जन्तर-मन्तर-सा करती है पखी-पखिनियों की बोली
नज़रें आज उतार रही है, चढ़ा रहीं श्रद्धाजलि भोली।

आओ इस त्रिकोण पर बैठें, नालों ने मिल बना दिया है
छाँवों ने धूपों में बढ़ कर नाले पर उपकार किया है।
यहीं मचलती होगी राधा यहीं मचलते होंगे श्याम
इन्द्रधनुष के औंधे झूले पर सीधी पड आयी घाम।



७

तारों के हीरे गुथे मेघ के घर से
जब फेंक चुके सर्वस्व तभी तुम बरसे।

खो बैठे चाँदनियों-सी उजली रात
जब तन करता हँस कर प्रकाश से बातें।

जब उषा कर रही हाथ जोड़ सन्ध्या-सी
जब रात लग उठी विधवा-सी, वन्ध्या-सी।

सपनों-सा स्वर पर पानी उतर रहा था
सन्ध्या को वैभव ठगा सँवर रहा था।

सस्ती उतरी थी, भू-पर हो दीवानी
जब बरस उठी थी रिमझिम एक कहानी।

दानों फूला 'छू जाना' भूल रहा था
तरुओं को पहना स्वयं दुकूल रहा था।

रानी-सी मलयज मन्द-मन्द झरती थी
वह कोटि-कोटि कलियाँ जीती मरती थी।

चाँदी के डोले, चाँदी के ढीमर थे
चाँदी के राजकुमार सजे अम्बर थे।

चाँदी उतरी थी तम पर राज रही थी
चाँदी के घर चाँदी की लाज रही थी।

तम तरुओं के नीचे बारी-बारी
छुपना-मिलता-सा, बना, आज से सारी—

गति का रथ उसकी रुका, बेडियाँ पहने
बन्दी बैठा था, पहन जेल के गहने।

दौड़ी आती जल-ज्योति अलकनन्दा-सी
तम के झुरमुट, वृन्दावन की वृन्दा-सी।

सोने के घर से नीलम बरस रहे थे
चाँदी से ढल-ढल कर तम बरस रहे थे।



८

रस की बरसात हुई, ऐसी क्या बात हुई,
गति के ही काँधों पर, दिवस चला, रात हुई।

गरजन, बरसन, सिहरन, कम्प स्वेद-जाल बुना
किसने ये भाव दिये, किसने ये देश चुना ?

शोषण के दानों में, मेघ की पछाड़ों में
नालों के हुलने में, सिंह की दहाड़ों में,

बोल रहा जो भी हो, रस खोल रहा जो भी हो
नित नव संयोगी हो, जन्म का वियोगी हो,

इन्द्रधनुष पहना दो उसे खींच-खींच यहाँ
शान्तिदत्त, शान्ति-प्राण जाने दो जाय जहाँ !

उसकी ही रचना को उसको ही दान करें
स्वर में संगीत रहे कृति में बलिदान भरें !

इतना ही दर्शन का दर्शन अभिराम रहे
'गिर पड़ना' गति का है उठो यों प्रणाम रहे !

वायु बने माता की साड़ी का तार-तार
मेरे जागृत महान्, मेरे अभिमत उदार।



९

पानी भी पड़ता जाता है, गरमी भी पडती जाती है
सन्देहों की राशि समर्पण में प्रतिक्षण बढ़ती जाती है।

जब रिमझिम पड जावे धीमी
ग्रीष्म बूँद घर करे मुनीमी
हवा चल उठे ऊबड-खाबड
स्वेद-धार हो जाये धीमी,

उसी समय हरियाली के सिर सूर्य-किरण चढ़ती जाती है
पानी भी पडता जाता है, गरमी भी पडती जाती है॥

कितनी हरी भूमि की साड़ी
मधुर फूल के बूटों वाली
विमल व्याप्ति मे भरी-भरी-सी
और प्राप्ति में बिलकुल ख़ाली।

पानी ले सूरज की किरणें इन्द्रधनुष गढ़ती जाती है
पानी भी पडता जाता है, गरमी भी पडती जाती है॥

छलक पड़ा मधु-रस अम्बर से
लिया अधर पर मधुर अधर से
अब जी-भर जीवन पर बरसे
कभी इधर से कभी उधर से।

आज जन्मके पाठ सलौनी प्रकृति विवश पढती जाती है।
पानी भी पडता जाता है, गरमी भी पडती जाती है॥



१०

भर-भर आया है सावन नयनों का
पुतली पर कोई झूल गया चुप-चुप-सा

इस प्रथम चरण ने वरण कर लिये सपने
हम सब समेट लाये थे अपने-अपने,

शिशु अन्धकार पर बिखर गगन के तारे
स्तन नहीं मिला, फिरते थे मारे-मारे

जब भूल चुका 'निज-पर' का जीवन-गान
उस दिन अनन्त से हुई नयी पहचान,

नभ पर लटके से इन्द्रधनुष चूते थे
डालियाँ झुका कर तरु वसुधा छूते थे,

इस व्याप्त गगन के मोह-पख से प्यारे
हिलते-डुलते थे, तारे न्यारे-न्यारे।

कितना प्रभात था, उषा गगन पर छायी
फूलों की डालों चढ़ी सवारी आयी!

यों है, ये पलकें भू रानी ने खोलीं
कोमल गन्धें, वृक्षों के सर चढ़ बोलीं

भर-भर आया है सावन नयनों का
यह उत्सव है अधखोले नयनों का।



११

पानी आया, धीरे-धीरे सावन की बौछारें आयीं
मरण न्यौतती-सी जीवन की कितनी मृदु मनुहारें आयीं ?
चाँद छुप गया, तारे भागे रात भागने को कहती है
हवा अकेली पडी रह गयी प्रिय धीरे-धीरे बहती है।

भीज गये वन के हरियाले धन कि डालियाँ गीली कर-कर
सौंधी गन्ध उड़ रही चाहों की व्याकुल अगवानी कर-कर,
लटक पड़ीं ये लट लम्बिनी, विलम्बिनी पृथिवी के काँधे
जो कि शीश दे पाये पीढी, वह आये, केशों को बाँधे।

खिसके वे मेघो के परदे, चन्द्रकिरण रूठी-सी आयी
आज सुगन्धों-भरी अनिल ने, क्षिति की बिगडी बात बनायी,
किन्तु उधर युद्धो में रत-सी, तम पर लो ऊषा बढ़ आयी
वे घोंसला-नरेश चल पडे, बजा उठे अपनी शहनाई।

मै हूँ यह एकान्त पवन है, वन है, उनके पावन पद है
आज हथेली पर शिर युग का देख-देख कितने गदगद है,
किरणो की उतरन के मानी है सोने के पाँव लगाना
और मिलन के अर्थ आज है उनके चरणों पर चढ जाना।

जमीं जहाँ आँखें कि व्याप्त की किरण-किरण हो उठी रेशमी
भूलों में इतने खिलते है, यादों में भर उठी है कमी,
रक्तिम हो आये है ये तो नैना नहीं महरबानी के
आँखें बरस उठीं सनेह में, झरने भर आये पानी के।

छाया इधर-उधर कानों की ये लटकनियाँ लटक उठी है
पत्ते गिर-गिर पड़ें, डालियाँ किसके रुख पर मटक उठी है,;
जीवन आज डाह कर उट्ठा अर्पण में इतनी मधुराई
क्षण आये, अणु आये कोमल जैसे याद तुम्हारी आयी ॥



१२

तन पर हाथों पर हथकड़ियाँ इन्हें, उठो सावन में भूलें
आमों की डालों डाला है, मन से चलो झूलने झूलें।
यादों की डोरी को ज़रा ज़ोर से थामो छूट न जायें
चोर डाकुओं की बस्ती है अपने सपने लूट न जायें।
अमर चाँदनी की ये डोरें उतर पड़ीं मन पर छायीं-सी
भीनी फूलों की मधु-गन्धें, चुप-चुप यहाँ दौड़ आयीं-सी
हरी घास की उस मख़मल को इस मख़मल पर कहो, सँभालो
पुतली में आँसू आने से प्रथम विशाल झूलने डालो।
बूँद-बूँद चुम्बन लेती है ओसें, कितनी मस्तानी है,
सूरज की किरणों पर चमके मोती का कैसा पानी है ?
जैसी सरक रहीं ज़ंजीरें, वैसी सरक उठी ये रातें
जैसे आवे साहब वैसे आती है बेमर्धी प्रभातें।
भाव बाँटते आ निकला है बरसों का साथी अभाव यह
विरह-मिलन बन कर आया है, दिवा-स्वप्न का अमर दाँव यह।
साँस-माँस झूले लेती है, फूल-फूल कुछ बोल उठा है
इस खिलने में मरण छुपा है, कह कर संकट खोल चुका है।
फल कहता है, मूँठ बाँध ले, गाँठ बाँध ले, हो जा न्यारा
तू अपने में अमर बना रह क्या कर सके काल हत्यारा।
जीवन गुन-गुन बोल उठा है मानो बोल उठे हों तारे
विश्वासों पर आते-जाते सन्देशे सुन पड़ें तुम्हारे।



१३

मणि-मुक्ताओं की यह माला टूट पड़ी
पानी बरसा, वृक्षों के घर लूट पडी

यह न नयी बूँदों की रखवाली है
लक्ष्मी-पूजन करो, अरे दीवाली है।

कहो वायु से तोड न दे हीरे-मोती
प्रकृति डालि में बैठी है सपने पोती

वह गिर गया, उठाओ, दौड़ो, देखो तो
कहाँ लग गयी, सिर सहलाओ, सेंको तो।

फूल गिरा ? भूकम्प हो गया, खूब गिरा
भू से कर विद्रोह भूमि पर पुन गिरा

खिलते ही गिर पड़ी मोतियों की माला
तम गरीब को पड़ा प्रकाशों से पाला !

घर ऊगा है, वह ऊगा है, ज्वार लिये
लड़ने उतरा हरे-हरे हथियार लिये।

मन्द-मलय की तरल भूमि पर चपल-चरण
रख-रख हुई निहाल वन्दना असित-चरण।

मोती की बोली, मोती का-सा छू जाना
मोती-से क्षण, यादों में मोती आना

करके आँखों के मोती पानी-पानी
फूल उठी है, लक्ष्मी बन कर बदनामी।

यह सोने के फूल रहे,
इन पर सोने की धूल रही
रूप, गन्ध, रस के झूले में
घड़ियाँ कैसी झूल रहीं।

अन्तर का सौन्दर्य भर उठा
इस निहाल से अम्बर में,
नन्दन की प्रभुता भर आयी
मेरे इस नन्हें घर में।

भर आयी मणियो से
यह निशि काली है,
लक्ष्मी-पूजन करो, उठो,
दीवाली है।



१४

पानी तू ज़मीन पर दौड़ा क्यों आता है,
गिरता है, फिर भी हरियाता इतराता है ?
पतित हो रहा है, नित नयी गर्जना क्यों है
बूँद-बूँद है, फिर तेरा 'मै' पना क्यों है ?
गगन दे रहा फेंक, उसी के घर जाता है
बैठ वायु पर तू कितने धक्के खाता है ?
ऊँचाई ? नभ से नहीं, भूमि से ऊँचा ?
भागा फिरता है, टुकड़े हुआ समूचा !
ठण्डा है गरमी भी तेरा साथ न देती
क्षणिक चचला कभी हाथ में हाथ न देती
फिर खेतों पर नहीं सिन्धु पर भी गिरता है
घेले को पूछें न वहाँ भी तो घिरता है !
मोती के-से चमकदार हिमकण, हाँ पाये,
पर वे पानी हुए, ठहरने ही कब पाये ?
जहाँ उच्चता पतित हुई, गरिमा खोती है
वहाँ टूट पड़ने से शीतलता होती है।
नभ के मुकुट, गगन के झण्डे, रण-नायक सेनानी
पतित न हो, वरदान बाँट तू, ऊगे तेरा पानी।



१५

जब-जब काले मेघ गरज उठने जी-भर
तब-तब मेरे आँगन का चाँद किलकता है !
जब-जब माँ से 'माँ' बाबा से 'बा' कहता है
उसके दुश्मन कह उठते है, क्या बकता है !

वह अन्धकार भर गया गगन मे आँगन तक
आँखों से ओझल दुनिया आती-जाती है,
लगता है तम-शिशु गोदी ले निशि की रानी
तारों का डर दिखला कर उसे सुलाती है।

मेघो-सी जब-जब बोल-बोल उठती साँसें
बिजली-सी तब मै तडप-तडप रह जाती हूँ,
जब झरने की लोरियाँ सुनायी पडती है
मुन्ना सोता है, समझ कि मै ही गाती हूँ।

रवि की प्रजनन कसमसा उठी ऊषा के घर
पखिनियो ने गाये स्वागत के गीत अमर !
बस अब ताली देकर मुन्ना उठ आयेगा
'मुझको दो' 'मुझको दो'—शोर मचायेगा !



मेघों के कागज़ पर सूरज जब लिक्खे सुनहरी इबारत
छुप-छुप जायें लपक बिजलियाँ चमक-चमक उठने का ले व्रत।
जब पानी नीचे को आये, ऊपर को उठ छायें तरुवर
काले घन, काली ज़मीन पर उतर-उतर बरसें गर्जन कर।
उस दिन इन्द्रधनुष से कहना उठ कर घेरा-सा घिर आये
हरी-हरी मखमली भूमि को रंगों-भरा मुकुट पहनाये।
जी की इच्छाओं-सी सरके हरी भूमि पर गोकुल गायें
चरण-चरण कैसे चल पायें, आड़े-टेढ़े, दायें-बायें।
पानी के पर्वत से नभ से गिरा रहे पर्वत पर पानी
सूली के घर में बरसी हो ज्यों इस घर की रामकहानी।
पन्थ-पन्थ पानी में डूबे, सृष्टि आज गुमराह हो गयी
ठण्डक के हाथों किरनों की आगी आज तबाह हो गयी।
नये फूल फल लग आये हैं, नया-नया इतिहास बन रहा
इधर झुक रहा, उधर तन रहा, यहाँ हँस उठा, वहाँ बन रहा।
धीमी साँसों की होड़ों में मन्द मलय चलती बहती है
युग मिटते-बनते हैं ऐसे तरु के कानों में कहती है।
पन्थी बादल से कुछ बोला, पन्थिनि एक दहाड़ खा गयी
टूट-टूट गिर आया पानी, बिजली गिरी पछाड़ खा गयी।
ऊँचे की कालिमा गिरी, नीचे पर आयी उजली होने
ताप जहाँ से बरसा, आयी वर्षा उसी ताप को धोने।
तरु नभ-दिशि चल दिये कि नभ के तरल क़र्ज़ को लौटा देंगे
नभ की विवश कालिमा को ये भूमि सदृश ही हरिया देंगे।

तटिनी नटिनी दौड़ रही है, दौड़ों में पथ छोड उठी है
यह सागर में डूब जायगी ऐसी इसे मरोर उठी है।
कोई सुधी गगन में बैठा कितने मोती बाँट रहा है
हर्षित आज कृषक ललनाएँ कृषक बनाता ठाठ रहा है
हल हलके हो गये बैल हरियाली लख कर डोल उठे है
खेतिहर वर्षा की मारो, जुती नाडियाँ खोल उठे है।

▪

१७

जब तरल करों से बाँट रहा बूँदे अपार
हिल रहा है हवा के झोंकों पर जो बार-बार

जो खींच रसा के कीचड़ से रस-रूप-ज्वार
पत्तों, डालों, फूलों को बाँट रहा उदार!

तब कौन कि जो उसकी लहरों को टोके
ऊँचे उठते हरिताभ-तत्त्व को रोके

बूँदें नीचे को झर-झर गिरती सहस बार
तरु उगे, उठे, बढ़े, निकल आये हज़ार।

किरनें इन पर झुक-झुक कर फेरा-फेरी
सौन्दर्य-कोष देने में करें न देरी।

ऊँचे उठतों की कौन करे बदनामी?
चढ़ने-बढ़ने में ये हैं अपने स्वामी।

फूलों से देखो कीचड़ का यह नाता
किस ढब गढ़ता है स्वाद, सुगन्ध विधाता!

चढ़ कर गिरते हैं मातृ-भूमि की गोद
है कौन कि छीने इनका उठता मोद।

लीला-ललाम, यों सुबह-शाम पर वारी
कुंजों को गढ़ता, देखो कुंजबिहारी!

यह फूलों और फलों कि दुलार रहा है
तुमको कि मौन उन्मत्त पुकार रहा है।

यों लूट-लूट प्रकृति की महिमा सारी
छवियों पर छवियाँ बना रहा बनवारी
दुनिया वाढ़ों से इसे पुकार रही है
झरने की वाणी चरण पखार रही है।

रातों में तारे नित पहरा देते है
दिन में दिनमणि यौवन गहरा देते है॥

■

१८

कृषि-धन वैभव, स्वागत उत्सव
यह व्यापार बना नित सम्भव
मज़दूरी की चहल-पहल यह
वायुरूप, दृढ़, क्षण-क्षण यह द्रव

नदियाँ मीठीं
सागर खारा
वर्षा का मुँहज़ोर पसारा।

हरी-हरी पहिरन पहने यह
वन्य प्रदेश अनन्त घने यह
हरी-हरी पहने-सी साड़ी
पल द्रविता, पल हुई उघाड़ी

शीतल सन्ध्या
मधुर प्रभातें
वर्षा भर लायी सौगातें।

कलियों का फूलों का घेरा
शाखों पर सुफलों का डेरा
गन्धों-भरी पवन की गोदें
हरी-हरी मौजें, आमोदें

गिरि-शिखरों के
उगे ज्वार
यह सब वर्षा के शृंगार।

तीर्थ, तपोवन, गिरि, वन, प्यारा
गगा - जमना बहती धारा
जीवन, जन, श्रम, सुविधा, वेली
भू से शैल-शीश तक फैली

देवोपम
निर्वैर सम्पदा
वर्षा दुलहिन की यह अदा।

हरा, खुला वसुधा का सीना
बूँदों का ढल रहा पसीना
सफल हो रहा विधि का जीना
रोटी खाना, पानी पीना

करती है
कितनी क़ुर्बानी
यह वर्षा की आनी-जानी।

यह है भाग्य-रेख की शोभा
विधि के लिखे लेख की भाषा
यह है, जग की रामकहानी
यह जादू, अस्तित्व, तमाशा

वर्षा हुई
मिट गये भय
जय वर्षा की, जय-जय-जय!



१९

ये रूई के गाले-से
भीतर तड़ित सँभाले से
फिरते मारे-मारे दीखे
इधर-उधर मतवाले-से

कुछ गोरे-से, भूरे-से, तीतरबरनी, काले-से
बादल चढ़-चढ़ कर आये अँधियारी के उजियाले-से।

इन्हें न चैन भटकने से
कैसे भले लटकने से
गर्जन करते, लगता है
मानेंगे नहीं हटकने से

बनी झालरें सूर्य-किरण की, लगें नवीन दुशाले-से।
बादल चढ़-चढ़ कर आये अँधियारी के उजियाले-से।

बरस-बरस कर ऊग उठे-से
हरे-हरे मज़बूर उठे-से
गीले, पीले, नीले, मनहर
कुछ नजीक, कुछ दूर उठे-से।

ढुलक पड़े है, भूमण्डल पर भरे प्रकृति के प्याले-से।
बादल चढ़-चढ़ कर आये अँधियारी के उजियाले-से॥

कुछ फीका है, कुछ है गहरा
रग भर रहा सूरज बहरा
पृथिवी होड किये जाती है
तरुओं पर रगों का पहरा।

दोनों ओर रग घुल-घुल कर हुए शराबी प्याले-से।
बादल बढ-बढ़ कर आये अँधियारी के उजियाले-से॥

□

२०

जलधर से जल बरसा-बरसा
बिजली खा रही पछाड़-सी
पूरब की वायु बह रही है
धक्कों में मारे ढाड़ें-सी।

नीचे पानी मटमैला है
ऊपर बादल तीतरबरनी
ऊँचे पर उजला नाम और
नीचे की यह गँदली करनी।

खींच-खींच कर कौन मिटाता
टेढ़े अक्षर, लाँबी रेखा
उसकी कृतियाँ देख रहा हूँ
वह क्यों रहता है अनदेखा?

सन-सन पवन, टूटती बिजली
सर-सर-सर पानी की मारें
इनकी हलचल को दुतकारें
या छवियों की नज़र उतारें!

चुप्पी मरी, गिरी औंधे मुँह
स्वर-स्वर कैसा ज्वार आ गया
ताप आज कजूस हो गया
बादल आज उदार हो गया!

रीते हाथों चाह हो गयी
आह हो गयी नित घर-आँगन
यह प्रभाव की भाव-मण्डली
करने आती है पालागन!



२१

सहन, मौन से कहन लड़ी पर हार हो गयी
एक अचोला, जाभ चली लाचार हो गयी
आधी रात, बात का टोटा, छाया का क़द नाटा
देवल शिखर देख, ठहरे है अन्धड़ औ' सन्नाटा।

काली मशक लिये बिजली में बादल, नभ का भिश्ती,
सींच रहा ज़मीन पर पानी खड़ी देखती किश्ती।

डालों में हिलते-डुलते-से फूलों के गहने है,
ध्यानी है ये वृक्ष कि इनके तप के क्या कहने हैं।

खड़-खड खपरे कर उट्ठे है, बूँदें टपक रही है
कोने के दीपक की पलकें पल-पल झपक रही है।

पल्लव और पवन आपस से कर नित नयी ठठोली
डालें कर उठतीं प्रणाम जब ये बोले है बोली।

किरन उषा में लाल बनी पर प्यार हो गयी।
सहन मौन से कहन लडी पर हार हो गयी।



२२

कुछ-कुछ रख दूरी मटियाले अन्तर से
उठ-उठ हरियाले राजकुँवर इस घर से !

मोती की कलँगी पहन-पहन नन्हें से
सज गयीं बरातें, चले तरुण बन्ने-से !

गन्धों की डोली और वायु के कहार
ये चले कभी इस पार, कभी उस पार !

खड-खड़ होती है वायु-पतित वृन्दों से
कानाफूँसी कर रहे फूल, गन्धों से !

हिल उठी डालियाँ सुन्दर तरु की घेरी
ये वायु बनी साँसें देती है फेरी !

मत डरो, कि मै अपना आनन्द उलीचे
आगे क्या हूँ ? हूँ सदा तुम्हारे पीछे !

छाती छिद कर फूलों की, हार नहीं है
गिरने के क्षण का भी सहार नहीं है,
जब चल न पाय तेरी मरज़ी-नामरज़ी
इस पथ में पड़ती वह ससुरार नहीं है ।



२३

मधुर वर्तुल उठ रहे हैं धूम से !

अब अँधियारा आग उगलता,
स्थिर भी दौड़-दौड़ कर चलता !
वरदाता हाथों को मलता;

अब बलाहक हो गये है सूम से !
मधुर वर्तुल उठ रहे है धूम से !

खेतों में वीरत्व ऊगता,
मानव चलता चला डूबता,
भाग्य देख, नैराश्य ऊबता,

उपज के अनुराग आये लूम से !
मधुर वर्तुल उठ रहे है धूम से !

काँधे पर लाठी, सर छाया,
भूखा पेट, दूखती काया,
लो वह भाग्य-विधाता आया;

है परिश्रम-सधे स्वर मासूम-से !
मधुर वर्तुल उठ रहे है धूम से !

नीले पट नभ लिख गुण-वर्णन,
बूँदों के वर दे-दे, क्षण-क्षण,
भूल-भूल जाता ऊँचे प्रण;

वनों में शकर रहे है घूम-से !
मधुर वर्तुल उठ रहे है धूम से !



२४

उतर-उतर आयीं चाँदनियाँ तेरे इस सिंगार में,
कितनी प्रभुता होती है यादों के राजकुमार में !
जाग रही अस्पष्ट प्रतीक्षा मेघों की लाचारी में,
साँवलिया मेघों की छाया देती-सी फुलवारी में।

सपने ऐसे जोर कर रहे, शोर थम गया राहों का
युग बोला यह समय योगियों का है या वटराहों का ?
अभी हरी भू नहीं दीखती दिशि-दिशि काली-काली है,
चाँदनियों की डोरों से बँध गया समय, रखवाली है।

भीग-भीग कर गन्ध दे रहा निशिगन्धा का जोड़ा है,
जमुना की कल-कल में गन्धें नहा रही है, थोड़ा है।
सपनों में, गन्धों में, निशि में गायन गूँथ रही है
जीवन की घड़ियाँ, अनादि का अन्तर पूछ रही हैं।

शूल हँस उठे, फूल हँस उठे, पूर्व दिशा में उषा हँस उठी,
माँ अपने बेटे-बेटियाँ सुला-सुला आनन्द कस उठी।
देख-देख, ओसों के आँसू चुप-चुप-से भर आये है
तिनकों की वनकों का वह-वह मधुर सँदेसा लाये है।

तब पैजनियाँ थिरक उठेंगी जब सूरज ऊगेगा
गन्धें लोट-लोट जावेंगी, सोया भाग जगेगा।



२५

दोनों आँखो के बहते झरनों को रोको,
सपने बह कर गिर जायँ न दोनो झरनो से;
जीवन की अकथ कहानी भीतर ही रक्खो,
बाहर आकर कह दे न, गरीब उपरनों से।

बोलो में सपने घोलो नहीं स्वाद के धन
ऊपा सारा ज़ायका न अपना छोड चले;
इच्छाओं को बच जाने दो, विधि-मन्त्रो-सी,
तुम उन्हे कि किसके बल-बूते पर छोड चले।

कथनी के सिर करनी उतरी इन बूँदों में,
इतने ज़ालिम हो? क्यो चुपचाप कराह उठे;
यह कौन यन्त्रणा है कि अश्रु भर नयनों से
तुम चुप-चुप ही हो द्रवित, सुधी कर वाह उठे।

कैसा यह काव्य उतर आया दो नयनों में
मानो कारण से कार्य रखे सम्बन्ध नहीं।
खिल आये बगिया हौले से अन्तरतम की
पर पकड़ न सके मिलिन्द--कि उसमें गन्ध नहीं।

हँसते जाने से रोना कहीं छिपा भी है
जिह्वा से वह आँखों से यह चीत्कार उठा;
गीती घडियों पर इसने खिल सौगातें दीं
रीती पर वह जग की सौगातें वार उठा।

तुम अपने सपनों, चाहे जो छवि अवलोको।
दोनों आँखो से बहते झरनों को रोको।



२६

वर्षा ने आज बिदाई ली, जाड़े ने कुछ अँगड़ाई ली,
प्रकृति ने पावस बूँदों से रक्षण की नव भरपाई ली।
सूरज की किरणों के पथ से काले-काले आवरण हटे,
डूबे टीले, महकन उट्ठी, दिन की गर्तो के चरण हटे।
पहले उदार थी गगन-वृष्टि, अब तो उदार हो उठे खेत,
यह ऊग-ऊग आयी बहार, वह लहराने लग गयी रेत।
ऊपर से नीचे गिरने के दिन-रात गये, छवियाँ छायीं,
नीचे से ऊपर उठने की हरियाली पुनः लौट आयी।
अब पुनः बाँसुरी बज उठे, व्रज के यमुना वाले कछार,
धुल गये किनारे नदियों के, घुल गये गगन में घन अपार।
अब सहज हो गये गति के वृत, जाना नदियों के आर-पार,
अब खेतों के घर, अन्नों की, बन्दनवारे है द्वार-द्वार।
नालों, नदियों, सागरों, सरों ने नभ से नीलाम्बर पाये,
खेतों की मिटी कालिमा, उठ वे, हरे-हरे सब हो आये।
मलयानिल खेल रही छवि से पखिनियों ने कल-गान किये,
कलियों उठ आयीं वृन्तों पर फूलों को नव-मेहमान किये।
घिरने, गिरने के तरल रहस्यों का सहसा अवसान हुआ,
दायें-बायें से उठी पवन, उठते पौधों का मान हुआ।
आने लग गयी धरा पर भी मौसमी हवा छवि प्यारी की
यादों में लौट रहीं निधियों, मनमोहन कुंजबिहारी की।



२७

पहले हुए लाल कोमल से, तरुवर के पत्ते मखमल-से
फिर वे बिखरे यत्र तत्र-से, सूख गये जो भोजपत्र-से,

शरद बीती, पतझड़ घिर आया
तरुवर नग्न हुए।

लाल-लाल सूरज का उगना, लाल-लाल माटी की महिमा
कुहरों-सी ले चली उमरियाँ, जीवन पर था सहमा-सहमा,

इच्छाओं के नन्हें पौधे
सहसा भग्न हुए।

देख-देख धानों की बैतरणी, पार उतर आयी सी धरणी
दामिनियों से खेल उठी-सी, सूरज की मनमानी करनी,

दर्शक और दृश्य दोनों ही
मिट कर मग्न हुए।

पारस देहों की गोरी-सी, रात घुल रही धीमे-धीमे
नसों में कुनकुना-सा चुप-चुप, जग उठा आनन्द इसी से,
ये प्रणाम कर उठी बेलियाँ
तरु मगन हुए।

नवीन वर्ष हो, पड़े मन्दभागी-से,
पानी-रक्षक बेहाल हुए भागी-से।

है भवन-भवन ने बन्द विवाद किया है,
कैसे चुप हैं, कोटि अपराध किया है।

वह रूपा चाँदनी रैन रही जो छाया,
वृक्षों ने छन-भर लिपट बुझाती काया।

इस अमर नीड़ की अमर प्रतीक्षा भोली,
विधि ने न मीन की मूक वेदना खोली।

ये झाड़ खड़े हैं, उधर विमान खड़े हैं,
इनमें जाने के सब सामान पड़े हैं।

वृक्षों ने नाप कर इस चलने को छलना,
डाला पक्षियों की डालों का पलना।

हर्षे से, कोकिल से अधिक [illegible] चढ़ आया,
मन ने, तन ने, जीवन ने नीर चढ़ाया।

ये भाव स्वस्थ हैं, आँगन बिगाड़ न पाया,
यों जीवन में अनुराग लौट कर आया॥

■

२९

गगन आज इस रंगमंच पर उतर पड़ो
जिसे वे महिमा कहते हैं!

घट कर भी न घटीं घटनाएँ,
सिमिट याद की भी रचनाएँ,
आती है अवचनी अचानक
जैसे सूझें, बिना कथानक,
मगन आज श्रद्धा में नभ में बरस पड़ो,
जिसे कि वे अणिमा कहते हैं!

विविध, आज विपरीत हो गया,
शापित साधन, प्रीत हो गया,
छोड़ा जिसे अधीन हो गया,
चिन्तन जग की रीत हो गया,
सजल आज काजल के रथ पर छलक पड़ो
जिसे पतन-गरिमा कहते हैं!

ये शृंगार घिसे-से हैं कुछ,
पहने हार रिसे-से हैं कुछ
जिनको मोती कहा, दुलारा
वे रद-पाँत पिसे से हैं कुछ,
अमल विश्व में फैल-फैल कर सिद्ध कर सको
जिसे प्राण-लघिमा कहते हैं!



३०

कैसा सुन्दर बना देती है
बरसातें चौमासों वाली,
निखर-निखर जाती हैं चंचल
नभ की छवियां तारों वाली!

गोल गोल रचती जाती है
बिन्दु-बिन्दु के वृत्त बना कर,
हरी हरीतिमा कर देता है
भूमि, श्याम को घना घना कर।

मैं उनको पृथिवी से देखूं
वह मुझको देखें अम्बर से,
जाने बना-बना डाले हैं
खड़े हुए हैं आठ पहर में।

नूतन अनदेखा लगता है
छवियाँ नव नभ में ला आतीं,
जितना प्यार उड़ेल रही हैं
ये बरसातें आती जातीं?

इनमें श्याम सलोना ढूँढ़ो
छुपा लिया है अपने उर में,
गरज, घुमड़, बरसन, बिजली-सी
फूट उठी सारे अम्बर में!



३१

भटक न जाऊँ मैं इस स्वर के रूप में
अन्ध तमिस्रा के अनहोने कूप में।

यहाँ कहाँ शोभा सर्गान पहेलियाँ
कैसी, जिसके पास गुँथी अठखेलियाँ,

भला कहाँ यमुना तट पर बटमार मिले
वृन्दावन का शायद रखवाला यार मिले।

शैल शिखर गल रहे ब्रज का राज लिये
टूट-टूट पड़ने का सभी समाज लिये,

उठता है सन्देश में गिरी सी धार में
आता है आवेश सलोने प्यार में।

फूलों में उग आये काँटे डाल कर
किसने रक्खा इतना उन्हें सँभाल कर ?

ये न गिर सके, फूल-फूल सब गिर गये
फूलों के साथी लगते काँटे नये।

देख रहे हो, वह बबूल उस पार-सा
वहाँ खड़ा है आज सिपहसालार-सा,

जब बादल निस्सीम अधिक असहाय है
सीमाओं को बना बबूल निहाल है।

गुण-दोषों का मेल फूल काँटा हुआ
पखे झलती हवा—ज़ोर चाँटा हुआ।

३२

चपल जुगनुओं के चमकीले वेश पर
छोटे-से नाज़ुक अज्ञात सन्देश पर,

किसी कहानी वृन्दावन के प्यार की
रानी रूठन की उनके अभिसार की,

रुक-रुक जाना कितनी मीठी बात है
अभी दिवस है अभी-अभी-सी रात है,

पत्तों की क्या बात हवा कर झूमना
गिर जाएँ तो दुश्मन को भी चूमना,

प्यार आ गया उनमें निज मनोपन का
प्यार उनमें ना आया आत्म-समर्पण का,

कितना कोई तोल मीठा बोलना
फूलों में दुबके रहस्य को खोलना।

मन उमँगे, गंध घटावाली हुई
शील न पहनी छवियाँ मानवाली हुईं।



तुम इस धारा से मत रोको
यह तो करुणा की वाणी है।

उमगो, बहो बढ़ो, उमगो
पहाड़ों पर हार गया मानो
पत्थर, मिट्टी, रोड़ा, रेता
रोके, उपकार नहीं मानो।

छिन्न भिन्न टुकड़े होते हैं
तुम अपने का गर्व करो,
बहो, बाढ़ की राग में
उस मनमानी की होड़ भरो।

सिंहासन, मुकुट, मुखारविन्द
बहती धारा के लायक हैं
जो गरज उठे, गिर पड़ें, घने हों—
घनश्याम हैं, बादल हैं।

धरती से छान रहा कोई
बूँदों-बूँदों को गगन बड़ा,
पर्वत, पत्थर, कुछ भी बोलें
वह दौड़ रहा है नया-नया।

वह शैल, भूमि की उँगली का
केवल मनहरण इशारा है
यह धारा जी की फिसलन का
मन को अनमोल सहारा है।

३४

यह गुस्ताख़ बहुत बोले है बोली अब 'आकार' की,
भार उतारेगा यह किसका बातें कर-कर मार की ।

पछी के बोलों का मतलब यह मनहूस समझ लेता है,
पखिनियाँ घोंसले सजावें, यह उनको ताने देता है ।

जब कपास पर फूल उमड़ते, इसको वहाँ ज्वार दिखते हैं,
लोग सुफल के सपने देखें, इसको वहाँ तार दिखते हैं ।

साँझ फूल उठती है जिस दिन उस दिन फूलों का क्या कहना,
इन्द्रधनुष पर लिखी इन्द्र की सिमटी भूलों का क्या कहना ।

गायें-बैल, ग्वाल-ग्वालिनियाँ लौट रहीं घर दायें-बायें,
पछी पोंछ उठा है याऊँ किसको छोड़ें, किसको पायें ।

यमुना की दौड़ों में जिस दिन, बाढ़ों-भरी धार आयी है,
वृन्दावन में गायों का पीछा करती बहार आयी है ।

काली घटा देख कर भी सखि, कहती है घमार गा आली ।
दीख पड़ा काली-फन-नर्तक, कुञ्जों का प्यारा बनमाली ।

३५

तितर-बितर फेंक-फेंक
कण-कण में व्याप्त एक
पीड़ाएँ कर अनेक
अन्धकार खो गया।

किसने, कब कहा, कौन
सो चुप-चुप नाप मौन
बना, गया, जन-मन क्षण
प्यार में डुबो गया।

गायन कर बार-बार
फिर कर मनुहार, हार
प्राणों में व्याप्त परिधि
पानी बरसा उठी।

आँख के दो चपल द्वार
खोले, बह उठा नेह,
श्रम के अणु-बिन्दु बहे
स्वागत कर उठा गेह!

अर्पण के स्वर लेकर
बढ़ आये स्वप्न चार
कितने अनमोल मधुर
कितने अभिनव उदार!

पत्र हिले, गात हिले,
यह कैसी वायु चली,
सोनजुही अन्तर की
चरणों चढ़ आज खिली।

सपनों की रातों को
नींद का दुलार दिये
पृष्ठभूमि स्मृतियों को
मृदुल बार-बार दिये।

भूली फरियादों को
चाह का निखार दिये
मोती की क्षणमाला
सौ-सौ गलहार दिये।

उनके चरणों बैठे
उनके स्मरणों व्यापे
उनकी अर्पण-निधि में
सम्मोहन-क्षण ढाँपे।

एक बार इधर-उधर
एक बार चरणों पर
दृष्टि-दृष्टि डाल-डाल
तृण की गरिमा मापे।

वे आये, वे सहमे, वे बोले बार-बार
क्षण के अणु, मन के तृण, कितने अभिनव उदार।

कहीं भी इतनी मात्रा में देखा तुम्हारा नाम
क्या कि जगमें अपना [illegible] [illegible] करते हैं बदनाम!

तुम निर्भय, दुर्जय, अविनाशी, 'जिन पर' से अति दूर
औरों जैसा, आकर्षण [illegible] मिलने में मजबूर।

इस दुनिया पर चढ़ चढ़ तुमको पाने हैं [illegible] से
कविता में, दुनिया के दर में, [illegible], साधन, [illegible] से।

कहाँ कहाँ आओगे जाने से, तुमको नगर ऊपर जाते से
दल पर, दलित पर, अर्पण [illegible] पर, बार-बार भर-भर आते से।

लिपि से लिखित [illegible] इस पर [illegible] किये विश्राम
इस [illegible] है, आँख-आँख पर देखा तुम्हारा नाम!

■

३७

मधुर पराग घुला जाता है फूलो का
धुला जा रहा है अनुराग दुकूलो का
बूंदें नाच रहीं, पत्रक भी डोल रहे
अनकहनी सब मौन राग में बोल रहे।

कांटे की बाड़ी बगिया के आस-पास
फूल और कांटे गुलाब के पास-पास
कांटों-सी चुभ रहीं बूँद सुकुमारी को
फूलों भर आये-से कुंजबिहारी को।

कांटों में से फूल ताल मे गायक-से
नायक-सी बातें करते खलनायक-से
फूलों की यह फबन, फलों की लटकन से
रस भर आया, रस भर आया कन-कन से।

सह दुकूल की मार कुसुमजी गर्म हुए
नहीं झपकते पलक, बड़े बेशर्म हुए
टर जावेंगे? आँखें अजब दिखाते है
झटका दिया कि पैरों पर गिर आते हैं।

राधा तू मन निकल, तुझे क्या पड़ी सखी
निकल पड़ी घर से सावन की झड़ी सखी।

॥

३८

फिर भी होता रहता मन पर यह लेना यह देना
और प्रीति कर लेने के हित सतत प्रीति कर लेना।

'? जाता-सा' आज तुम्हारा बादल की बूँदों गिरता है
यादों के डंठों पर बैठा यह काफ़िला लिये फिरता है।

यह छायाएँ, यह निर्वातें, चलीं स्नेह-सागर में चुप चुप
कहीं डूब गईं अनजानी, घर में पैठ रही हैं गुप-चुप।

भला लहरों में समुद्र का कौन वणिक है तौल सका है
सागर की हृदय लेना-देनी भी कोई बोल सका है।

पर्वत जैसे कि वैसे चोटी—असित सिन्धु है, अगम सिन्धु है
उमड़-उमड़ आता है मेरा उतना का यह सगा बन्धु है।

ॼ

२९

दर्शन करता हूँ
और बहुत अकुलाता हूँ।

बरस-बरस कर सपने ये रंगीन
उग-उग आये हैं नित्य-नवीन
इन पर रंगों की बहुत पड़ गयी छाया
पत्तों-फूलों का रंग फलों में लीन,

तुम इन रंगों में
कितने घन, मन भाये हो
जब तुम पर टूटे रंग चढ़ाने आता हूँ।
और बहुत अकुलाता हूँ।

वर्षा की बूँदें गूँथ रहा है पवन-पथिक
ठण्डी बरसन के आर-पार हो जाता है,
रंगीन सृष्टि सब, रंगों पर मतवाला हो
रंगीन बिजलियों रह-रह कर चमकाती हैं

पर चमक पुरानी
पड़ जाती है बार-बार
जब तेरे चरणों में मैं उसे मिलाता हूँ।
और बहुत अकुलाता हूँ।

घनश्याम इन चमकों के तुम होते हो
कभी गरजते रहे कभी गुमसुम होते हो,
बादल श्यामल, धरती श्यामल, ये दिन श्यामल
श्यामल पलकों के तुम ही कुंकुम होते हो,

सांवला अहीर-किशोर
चरण धो लेता है
जब अन्दर बाहर उसकी दौड़ मनाता हूं !
और बहुत अकुलाता हूं !

ग्वाल बालों की भूख इकट्ठे कर देखा
स्थानल लोगों ने आने क्यों शरमाते हैं
माटी जितनी ही अपनी वेणी चौंप रही
गोठों के घन थे उतने ही इठलाते हैं !

वह तरुण-चरण
नवरस रागिनी गाता है
जब इन्द्रधनुष के पवन डगें चिल्लाता हूँ ॥
और बहुत अकुलाता हूँ !

□

४२

लटक लटक वह लालटेन जल रही
झाड़ से बँधी बिचारी,
जाने कौन रात्रि में घण्टे
बजा रहा बावला पुजारी ?

जिसके सपने घिर-घिर आते
उसकी आशा का यह जमघट,
कितना मनमोहक होता है
उम्मीदों का अस्थिर मरघट !

नभ के पंख फूट आये हैं
करुणा-भरी गगन की बोली,
कितनी विह्वलता से द्रव हो
आज भूमि ने वेणी खोली !

चढ़ने-गिरने की मस्तानी
टोली आज झूलने झूले,
एक हिलोर लगाता हूँ मैं
एक हिलोर माधवी तू ले !

नदियाँ उमग-उमग उट्ठी हैं
तरु-तृण उठे बावले हो कर,
अपने घर से ऊँचे उठ कर
ये चल पड़े कहो किसके घर ?

गोरी के बालक-सी कलियाँ
तरुवर के उर तक भर आयीं,
मीरा के विष के प्याले-सी
लेन तुम्हीं अधरों को भायीं !

पहनाती तरुवर, वर ले ले
भू को आज निहाल कर उठे,
ऊँची बाँहें कर प्रभु का घर
देख मालामाल कर उठे !

यह प्रकाश का पागल जग-जग
तम की स्वाद-सुधा क्यों भूला ?
भूल गया वृन्दावन, यमुना
भूला गोकुल ब्रज का झूला !

छूट-छूट जाती हैं वे लहरें
छू-छू हिलें — अनन्त पीत-पट,
जिनके सपने फिर-फिर आते
उनकी आशा का यह पनघट !

४२

सतत बिखरते-से खिलते हो फूलों की अंजलियों में
जैसे नजरों को मिलते हो वृन्दावन की गलियों में।

इस उतार पर, इस चढ़ाव पर, हिमगिरि के शृंगारों में
ऊँचे से नीचे पर आती-सी गंगा की धारों में।

कैसी आँखें मिचकाते हो, बैठे नभ के तारों में
ताप रहे हो, जाड़े की रातों जलते अंगारों में!

पखनियों के सामगान पर बोल रहे-से हो
बच्चों के बोलों पर ममता तोल रहे-से हो!

माँ की गोदी की कोमलता, भर-भर आती बाँहों में
कैसे दीखो हो मुरलीधर, तुम दुख-भरी कराहों में!

रवि-किरणों तुमको अर्घ्यदान देता हूँ
मलयानिल में क्षण-क्षण छू-छू लेता हूँ

गिरते झरनों, उठते पर्वत-शिखरों में
नृत्य के घुँघरुओं, मधु-संगीत-स्वरों में!

आँसू गिरते कुन्द के करुण फूलों में
आनन्द उमगता सावन के झूलों में!

जब दीख पड़े चिन्तन के झंझा-रथ पर
तब रोकूँ, तन कर खड़ा हो गया पथ पर!



४४

नवा-नदी के दोनों तट प्रतिकूल किये
मैकल-गिरि से गौन नर्मदा उतर चली ?
यह कारण से चलित प्रवाह लगा बहने
अनुदिन दक्षिण-दिक्-पार है बहुत भरी !

नीची-नीची टेढ़ी मोड़ तरल जल की रेखा,
टेढ़ी-मेढ़ी खिंच रही भूमि पर पानी का,
छिन छूटा, भर दौड़े लगने, मीठे स्वर
भर गीत चल उठा मधुर अगवानी का !

कितने उथल-पुथल, कितनी ये शरारतें
कितने तूने निकाला बैरन ये बातें;
यह उन्मादिनि बाढ़, बहुत हल्के जिनके
फिर हरियाले दिन, मुसकान-भरी रातें !

यह कल-कल का नाद अटपटे बोलों में
पानी की बूँदें बादल के हिण्डोलों में,
उन्मत्त दौड़ना और टूट पड़ना उतार पर
चक्कर खा जाना विधि के प्रणय-झकोलों में !

बाढ़ों में गति, चलने में गति, उठने में गति—
गिरने में गति, क्या कहूँ धन्य गति की रानी,
तुम पूज्य पुरातन-सी प्राचीन प्रमाण लिये
दिखलाती हो नित नयी दौड़, आनी-जानी !

खिलते फूलो सन्देशा तरल लिखा चल दी
रस-भरे फलों पर लिख अमरत-सी अमर बात;
नत हैं, तेरे तट बँधे, तरल वर दोनों पर
लिखते जीवन का अर्थ रोज़ सन्ध्या-प्रभात।

४५

किस कमला के लिए बुन रहे हो साड़ी बूटे वाली ?
नील गगन ! सुनते है प्रमदा तेरी यार बहुत काली !

किसकी बेंदी पर रक्खोगे चन्दा आज निढाल किये,
किसे पहनने को दोगे चॉदनी अनन्त निहाल किये !

किसके गालों की अरुणाई छा जायेगी ऊषा के घर
किसकी बोली गूँज उठेगी पखी-पखिनियों के मधु-स्वर !

किसके चरणों मे अर्पित हो धूप-छॉह मे रग आ रहा,
किसके चरण धुलाने को यह सागर आज पछाड़ खा रहा !

मन्द मलय प्रातः ही चलकर लिपट-लिपट कर वार रही है,
ये प्रकाश की किरणें ज़ालिम किसकी नज़र उतार रही है ?

वह कब आवेगा जिसकी यादें हो आयीं बहुत पुरानी ?
वह कब आवेगा जिसकी पग-ध्वनि होगी युग-युग पहचानी ?



४६

अथक रँगीला कौन रँग रहा नभ, गिरि, कानन बहुत सवेरे,
किसका यश गा-गा पखेरू बिना रुके जाते हैं टेरे ?

क्या यह प्रेम कहानी है, जो चुकती नहीं, प्रणय-धुन छाये,
जीभों के आमन्त्रण बिन आ जाती जीभें बिना बुलाये ?

पद्मिनियाँ पानी में डूबीं जाड़ा इन्हें नहीं लगता क्या,
हिलते खूब पवन से पत्ते सोया प्यार नहीं जगता क्या ?

यह सुगन्ध भर गयी पवन में, गगन निराश खड़ा है रानी,
नागी पर नागी की चलती बिना पाँव, कितनी मनभानी ?

वाम गाल के तिल से उलझी प्रीत गीत बन-बन अँगुलियाँ,
अन्तर की पुकार पर दौड़ी कोन बनाती मृदुल अँगुलियाँ ?

तेरे मेरे मन में आते पछी दल के अधबने बोल,
राधा तू बरसन को सँभाल, घनश्याम अमर रस ढोल-ढोल ।



४७

क्षण-क्षण मौजी की मौज ज़रा तू धीरे-धीरे आ,
रस से भरी, फलों से हारी, कलियों से शरमा।

फैल-फैल जाती-सी वेणी, कलियाँ उभर-उभर आतीं-सी,
पवन वेग से गगन लोक में शोभाएँ भर-भर आतीं-सी।

है कितना गुस्ताख़ वायु, डर करे न राधा प्यारी का,
लगता है एजेण्ट बन गया अब तो कुंजबिहारी का

फैली-सी चढ़ती-सी बेलों, कलियाँ कैसी बढ़-बढ़ आतीं
खिलना, मिलना और बिखरना जाने किससे पढ़-पढ़ आये ?

■

४८

यह हृदय है कि गुलदस्ता है फूलों का
भर आया बोझा लटक-लटक भूलों का।

कितने तारे जगमगा उठे अम्बर मे
फानूस लगाये है नीलम के घर में।

लहलहा रहीं बेलें कितने बल खातीं
रातों में छाती मोहन दिन भर आती।

यह माटी है, किसका पूजन करते हो
अंजुलियाँ साधे राधे से डरते हो।

इसमें मेरा कुछ नहीं प्रकृति है फूल उठी
मै एक ढूंढ़ती हूँ यह बनी अनेक उठी।



४९

प्रभात एक

धूएँ से लिपटी-लिपटी यह चपल प्रात
मानो सन्ध्या के रथ पर बैठी-सी आयी,
कोमल महको से खेल रही पा वायु वेग
कोमल किरणें कोमल पत्तों से टकरायीं।

छाया थिरकी या कि थिरकता है प्रभात
या परदों में छुप-छुप परछाई आती है,
इच्छाओं-सी बढ़ती जाती है किरण-किरण
छावों के नीचे लिखना-सा गुँथ जाती है।

पानी पर सूरज की धूपों के क्या कहने
नव-नव छन्दों के बन्द प्रयोग बनाती-सी,
अँधियारे के उस आसमान को धीरे-से
मुँदरी कर-कर तरु अगुलियों पहनाती-सी।

आँखें कि समय के बगुले की दो पाँखें है
उड़ती जाती है, बिलकुल ठहर नहीं पाती,
क्या छाया-सी, ऋतुओं-सी, इन चौमासों-सी
चलती-फिरती धीमी गति इसे नहीं भाती ?



५०

प्रभात दो

वसुमति का बेटा यह प्रभात जब आता है
कितनी जल्दी बच्चों में घुल-मिल जाता है,
कुछ तान तोडता-सा पछी-दल के स्वर मे
शरमाता-सा यह भू नभ में छा जाता है।

कितने मीठे सपनों का बल साधे है यह
राधा मे श्याम मिलाने की धुन गाता है,
मै जितना इसे ठहरने को बोलूँ-बोलूँ
उतना ही आगे बढ-बढ इतराता है।

यह चुपचाप चला आता है वसुधा पर
इसकी माँ ने पैजन इसे पिन्हाये है,
अति ढीठ, शरारत-भरा जान कर के भी
इसकी छवियों के गीत मलय ने गाये है।



५१

अब उषा अँगडाई-सी ले उठी यह जाग आया बोलना
डालियों में, पछियों का इस क़दर कैसे उठा मुँह खोलना ?
आ रही ध्वनि मन्दिरों की घण्टियाँ बजने लगीं, गन्ध का यह फैलना
शख की चीत्कार पर, यह क्या, क्षणों पर स्वरों का कि उँडेलना।
लग रहा है एक मेला-सा मनोरम, दो किरण का बोलना
अर्ध्य वाला हो चला भू से गगन तक वायु का यों डोलना।
सज गया प्यारे कदम्ब की डाल पर नित्य राधाकृष्ण का यह डोलना,

आज चुप्पी ने मधुर स्वर से कहा
बोलियों की टोलियाँ ले आइए,

नित्य कालिन्दी बहे चुपचाप से,
आप इसकी लहर चढ़कर गाइए!

भीगी-सी बाँसुरी उठाये कान्ह,
पछी दल फड़फडाये उठे तान,

हिमगिरि के शिखरों छवि रूप धरे,
सागर चट्टानो पर वार करे घमासान।

यह सवेरा है, सहस्रो रश्मियों,
अब न तुमको पडे कहीं टटोलना,

अब उषा अँगड़ाइयाँ-सी ले उठी यह,
जाग आया बोलना!



५२

क्षितिज जब मेंहदी लगा कर, उठी घोल गुलाल
और जब भगने लगे सब यामिनी के व्याल,
तब किसी ने किरण के कानों किया कुछ शोर
दौड आयी, पंख खोले दौड आयी भोर।

प्राणवानों को प्रणय ने दे दिया सन्देश,
यह तुम्हारी प्राण-गरिमा, यह तुम्हारा देश।



५३

भैरवी का समय है यह गीत पछी गा रहे है,
भानु का आना सितारे डूब कर समझा रहे है।

नाद के अपवाद स्वर को घोसले सुन पा रहे है,
बौरते ये आम झर कर वेदना बतला रहे है।

मरन्दो की महफिलो काले परिन्दे गूँजते है,
प्रार्थना के स्वर कली के चरण कोमल पूजते है।

रग आये है धरा पर, रग आये आहटों पर,
आज मौलिकता मुसकती है सजन, दोहराहटो पर।

कल न था वह आज है पर वह न कल फिर रह सकेगा,
लूमता-सा, झूमता-सा क्षण न अपनी कह सकेगा।

नर्मदा है, वह रही है मधुर उज्ज्वल धार लेकर,
कौन माँझी जा रहा अहसान अपना पार लेकर?

आज चिड़ियाँ चहक कर गिरि-कथन सागर को पिन्हाती,
आज वायु मृदगिनी सब कुछ स्वरों में गूँथ लाती!



५४

इस कुहरे की शाल ओढ़ कर
दिन का सूरज राजकुँवर यह
आया जग की आँख खोलने।

हवा चली, चलती ये किरणें
दोनों बोलें मुग्धा वाणी,
तरु-बेलें सब शीश झुलाते
अंग-अंग मधुरे मरोड़ कर।
इस कुहरे की शाल ओढ़ कर।

चाँदनियों की गुड़िया कैसी
नाच उठी है छाँव-छाँव पर
खेल रहा है समय, फिसलता
चुपके-चुपके गाँव-गाँव पर।
फूलों में सुगन्ध के गुच्छे
डाल रहा वह तोड़-तोड़ कर।
इस कुहरे की शाल ओढ़ कर।

५५

आज लडकिनी सन्ध्या की अगवानी है,
काजल आँज लिया आँखो मे पानी है।

चिडिया-सी उड कर आयी किस देश से,
लज्जित कब होती है काले केश से?

फैल उठी छिटकी-छिटकी चिनगारी-सी,
आकाशों ने जैसे नज़र उतारी-सी।
कितनी बार देखता-सा रह जाता हूँ,
कहाँ किसे मैं वहाँ ढूँढने पाता हूँ?

अँधियारा है, तरु की गोदें भरी हुई,
डालें, लम्बी, चमक सँजोये हरी हुई।

ओढ़ लिया मैके का पहिरन धानी है!
आज लडकिनी सन्ध्या की अगवानी है!



५६

अस्ताचल के उस उतार पर सोने के गीतों को लिखकर,
नीडों के रुख़ उडने वाले पछी भयभीतो को लिखकर।

सोयी शिथिल रात की गर्मी, जाग-जाग बागो भर आयी,
काली माटी पर कोमलता हौले-हौले झर-झर आयी।

तार मिलाती चाँदनियों के इठला रही तमिस्रा बाला,
हिलते-डुलते वायु-वेग पर रागिनियो ने स्वर रच डाला

चलो द्वैत मे डूबें साथी, दो आँखो मे भर-भर आओ,
री वेणी के बँधी मृदुलता, यह ज़मीन है झर-झर आओ!

रजनी भूमि सिंगार रही है गहने टाँग-टाँगकर नभ पर,
कौन आज गुस्ताख़ पवन बन घूम रहा घर-घर पहरे पर?

तुम वृन्दावन पर छाते हो या क्षिति को भाते हो सरबस,
साँस रुक रही है गीतो की, गा दो, रोको उन्हें न बरबस!

मैं सकेत भूल जाऊँगा, सब सन्देह याद हो आये,
लूट-लूट अभिमान करूँगा, तुमने फेंके, मैंने पाये।

शैल शिखर हे धीरे उतरो, गिरो, बहो, मस्तानी धुन से,
यह निष्पाप पतन यमुना का, रूठा करे सदा ही उनसे!

८

५७

वह सुवर्ण की रेख क्षितिज की साँझ चली,
सोये विहग-कुमार कि काजल आँज चली।

सूरजमुखी झुका बैठी मुँह नीचे को,
सभी रग घुल आये देख बगीचे को।

अब सुगन्ध का राज, रग सब हार गये,
अब छाया-छाया, किरनों के ज्वार गये।

सर्पाकार लोट कर रातें बडी हुई,
ये तम की दीवारें उठ कर खडी हुई।

कितनी मनुहारें उदास, वे भूल न अपने आये,
थकीं, द्रवित, उत्सुक पलकों में केवल सपने आये।

रूप रो उठा, डूबे, मेरी मिटी भगिमा सारी,
रस ने कहा, चरण-वन्दन मे सिर्फ़ हमारी बारी।

अगम, अछूते, ऊँचे शिखरों बहे अलकनन्दा-सी,
वृन्दावन में घिर-घिर आये वृन्द लिये वृन्दा-सी।

तेज गया कोलाहल बीता, दौड़ें और पुकारें,
सर साधें, अस्तित्व सँवारें, आओ चरण पखारें।

५८

मन पर ही लिख गया, सलोनी बात-सी,
दिन को कैसे बाँधे फैली रात-सी ?

पढ आँसू से लिखी पुतलियो, बोलियाँ,
सिसको पर मुसको से बनी ठठोलियाँ।

बेला की कलियाँ भर आयीं साँस में,
लगता है मीठा-सा सत्यानास में।

शब्दो में, फूलों मे क्या अन्तर रहा,
सूझो का कितना हरियाला घर रहा ?

बिखरी गन्धों की मोटों का ठाट है,
कैसे बँध पाये, स्वर है, सम्राट् है ?

पलको की मुट्ठियाँ बना कर, बाँध कर,
बिखरन में सग्रह की सुधियाँ याद कर,

पागल हो हो उठता हूँ, बरसात है
स्वय पूछने लगता हूँ, क्या बात है ?

गतियाँ गढ़ती स्पर्श-वस्त्र के झोल को,
लाज बढ़ाती है सपने के मोल को।

वह गुलाब गालों पर बिखरा, मौन है
कानो के गोलक पर हिलता कौन है ?

५९

चपल चाँदनी बिखर रही है रेशम की डोरी-सी
तरुणाई के सुन्दरतर की अँगुली के पोरों-सी
छिड़क रहा था गगन आज चन्दन की मृदुल फुहारें
देवालय से बिखर रही थीं श्वेत श्याम रतनारें !

आज विचार टपाटप गिरते दीख रहे आकाश से
आज प्रकाश उभर आया है तम के सत्यानाश से !

जल-जल उठती है इच्छाएँ चाँदनियों की आग से
कुछ क़ाबू में आ पाती है राग-भरे अनुराग से
जैसे टूट-टूट पड़ने की साख भर रहा है कोई
जैसे इच्छाओं की कोमल राख झर रहा है कोई !

झाँप रहा हूँ दीख न पड़ती परदा जालीदार है
झाँप रहा हूँ, माप न पाता, इतनी ज्योति उदार है !

झाँक नहीं पाता हूँ नभ में झाँक-झाँक रह जाता हूँ
खड़े-खड़े ही दृष्टि-देश से कितने फेरे खाता हूँ
चाँदी बरसाने वाला भी कैसा है, रंगीन है
क्या जीवन ख़रीद ही लेगा, नूतन है, प्राचीन है !

गगन देश पर मगन हुए से चन्दाराजा राज रहे
कितनी किरणें बेंच रहे है, नक़द मिले कि उधार रहे
लोचन और गगन की शोभा पी लेंगे ? कसा धन है ?
मधुराई पर आज उतर आया है, यह पागलपन है !

शरमाती है छुप जाती है, यही चाँदनी बरसातों में
यह मुसकान पलट जाती है, तम से ताडित घबरातों में !

सूरज भी मनुहारें करता दैव मुझे गिरिराज बना दे
किरण छूट-छूट पड़ती है, मुझको चाँदनिया पहना दे
चाँदनिया धरती की मुसकाहट है कैसी डोल रही है
रूप गर्विता के सारे अहसान विश्व पर खोल रही हैं!

पानी पीकर धरती मेरी शरद-चाँदनी से भर आयी
लम्बा-सा तन तोन हटा कर, चार महीनों में हँस पायी!



६०

किस-किस ने फेंका है जग में चाँदनियों का यह चूरण,
गन्धें नीचे को गिरती है ऊपर खोज रहा है मन।

इन्द्रधनुष ढूँढ़ें तो कैसे, नभ में घन का नाम,
दीख नहीं पडता, प्रतिभा का सुविधा से क्या काम ?

मेरा अन्त देखती-सी कोई सीमा सहलाती,
मस्तकधारी को बोलो नीद कैसे आती ?

वृन्दावन में आज अपूरण से खेलें सम्पूरण
किस-किस ने फेंका है जग में चाँदनियों का चूरण।

■

६१

बिन वलयाकित उतर रही है चाँदनियाँ
बिना बजे आनन्द दे रही है पैजनियाँ।
कोई खण्डहर पर बैठा है मीठे-मीठे गीत-सा
गाता है, छुप-छुप जाता है, रूठे-रूठे मीत-सा।
तुम ऊगे तो तिमिर हँस दिया, चाँदी की डोरो विवश किया।
किरणमयी छवियाँ बिखराती, गाती मौन कण्ठ से आती।
बेले की कलियाँ उतरी है, रूपमयी गुणगुणित भरी है।
रेती पर गिरता-सा यौवन, बरस रहा छवि की वरषा बन।
मलयज मन्द-मन्द मुसकाता, बिना बुलाये चलता आता।
चलो उठो दीवारें फाँदें, किरन-किरन अपने से बाँधें
तरु ले रहे उघाडे काँधे, बना रास मण्डल की 'राधे'।
जीवन की बाँसुरिया डोली, मौन-मौन कुछ बोली बोली।
बिखर-बिखर बेले का वैभव, नीरव गन्धों में भरता रव।
टेर रही अपने मोहन को वृजधनियाँ
बिन वलयाकित उतर रही है चाँदनियाँ।



६२

सूझों के चलने मे मस्ती घोल-घोल
यह हवा बह रही वन-प्रान्तर में डोल-डोल।

ऊँचे तरुओं मे नभ से प्राण बोलता है
फूलों-सा झडकर कितने भेद खोलता है?

किरणो की रेशम डोरें कितनी भीज गयीं
बैरन ये किस तरलाई पर रीझ गयीं?

शिखरों साडियॉ सूखती-सी देखीं
तम की पँसलियॉ दूखती-सी देखीं।

लो रूप रग से सजी-सजायी धारों से
चलो ज़रा आगे बढ़ जायँ किनारों से।

दृग खुलने पर दिखतीं चलतीं दृग मीचे
मै आगे - आगे, छाया पीछे - पीछे।

इन भू की हथेलियो से मैदानों में
रस बढ़ता-सा लगे खेत के दानों में।

क्षितिज लग रहा यहॉ अनन्त कमानी-सा
किरणों पर झर-झर पड़ते-से पानी-सा।

सूखे पत्तों की मख़मल को बिछा-बिछा
चित्र खींचता कौन धरा से खिंचा-खिंचा?



६३

मगन गगन से भूमि तलक यह
आज चाँदनी कहाँ गयी
चलो बुला लायें उसको अब
मिल जावेगी, जहाँ गयी!

वह मक्खन-सी मधुर चाँदनी
वह फैले आटे-सी प्यारी
भूतल के हीतल पर फैली
वह मधुरीली, वह सुकुमारी!

उस दिन अग-जग पर छायी थी
बेलों-सी लहलहा गयी
मगन गगन से भूमि तलक यह
आज चाँदनी कहाँ गयी?



६४

छिडक-छिडक मोतिया उजाला इस अग जग पर
चली चाँदनी रात, चाँद को सिर पर लेकर !
नभ का अमृत मृतप्राय जग पर बिखेर कर
मानो खडी हो गयी है तम तोम घेरकर !
छायाएँ गायब, कैसी मनहर छाया है
छुपनेवाले तेरी अनहोनी माया है !
अग-अग बन गये जीभ, स्वादें लेते है
नींदें, आँसू, सिहरन-सी यादें लेते हैं !
मन है कैसे चमकीले झोंके लेता है
समय पालने पर बैठा, घडियाँ सेता है !
ये विचार के राजकुँवर चुप-चुप आते-से
कुछ बढ़ते, कुछ घटते, कुछ-कुछ शरमाते-से ।
रेशम की चाँदनियाँ साडी पहने झीनी
मिलन कह रहा है, रख दी शशि ने अनबीनी ।
पलकें हँसीं, पुतलियों ने छवि पीना सीखा
साँसो ने सपनों-सपनों में जीना सीखा ।
किरणें रही बिखेर शारदी ऋतु आयी है
कैसी पागलनी है, किस ढब से छायी है ।
घर वन सागर भूमि चाँद के नहलाये-से
शीतलतम है, उत्तर ध्रुव से मिल आये-से !



६५

पवन से !

बहुत न दौडो थोडे पौढो
भूख नज़र को लग जायेगी !
इतने प्रात काल न धाओ
आओ, सरदी हो जायेगी।

फूलो की सुगन्ध लादोगे ?
अरे ले चले किस बज़ार में ?
धीरे चलो फिसल जाओगे
उस चढाव पर, इस उतार में।

फट न जायँगे अंग-अंग
ले कर उमंग बाँसों में आये
दुर्गन्धित हो गये, न माने
रह-रह कर साँसों में आये !

विश्व-प्राण हो तुम आगत के
नित्य नये हो, विजय-गान हो
यात्री के अनथके यान हो
मानस के कोमल प्रयाण हो।



६६

कुसुम है ये
या कि ऋतुओं के चरण के रूप है ।

समय-श्रम पर खिल रहीं लुनाइयाँ ये
वेछुपी-सी छुप रहीं अँगड़ाइयाँ ये
प्रकृति की अनपाइयों-सी पाइयाँ ये

शीश पर रह कर हिले-
छवि भूप है ये ।
कुसुम है ये
या कि ऋतुओं के चरण के रूप है ये ।

क्षण सुगन्धें बाँट कर क्षण-क्षण जिये है
मदन के धन से सतत पहरे दिये है
दृष्टि पर कुछ सृष्टि की महिमा लिये है

हवा के झोंको झुके कि अनूप है ये ।
कुसुम है ये
या कि ऋतुओं के चरण के रूप है ये ।

रग है, किसने कटीली बाड़ियों कर
इन्हे रोका सब तरफ़ से झाड़ियों पर
गर्व से हरितावली पर छा रहे हैं
साँवली-सी भूमि पर इतरा रहे हैं

अग, रगों की किरण की धूप हैं ये
कुसुम है ये
या कि ऋतुओं के चरण के रूप है ये ।

मिले आये से अनन्त विचार है ये
नयन, उपवन में अमित उपचार है ये
नियति यति के, स्वाद मयम और क्रम के
शृखला मे बंधे राजकुमार है ये।

झेलते ऋतुएँ कि स्मर विद्रूप है ये।
कुमुम है ये
याकि ऋतुओ के चरण के रूप है ये।



६७

इस हरियाली पर वनमाली ! कैसे रख दूँ पाँव
जहाँ लड़ा करती है कोमल बनी धूप से छाँव।

कितनी हरी-हरी झाड़ी है, जीवन डोल रहा है
बिना जीभ का जीभों वाला हँस कर बोल रहा है

तुमने भले लगाये माधव ! मोती वाले दावँ
कैसे पड़ें बताओ इन पर मेरे छोटे पाँव !

दिल-सा टूट पड़ें ये चुप-चुप आँसू-से झर जाय
कोमल-कोमल, निर्मल-निर्मल किसमें कहाँ समायें ?

पखेरू के सपनों-से दूबों के सिर के भार
किरणों से कहते दिखते, धीरे चलना होश्यार।

श्रम वह जादूगर बैठा है जो मेरा घनश्याम
तेरे मोती-से चरणों पर मेरे अमित प्रणाम !



६८

क्या गन्धायमान पाया है भाग्य-
बहुत ईर्ष्या होती है ?

कैसे खिल-खिल कर हँसते हो
तरु के मस्तक पर बसते हो
वायु आ रही धीरे-धीरे
गिरते हो ? इतने सस्ते हो ?

सारी गन्ध भूमि को देने
आये हो यों पतित रँगीले
गन्ध एक है किन्तु रूप है
लाल, हरे, नारंगी, पीले।

गन्धों का, सौन्दर्य-लोक का
क्या परिणाम यही होता है ?
जो कि सुगन्धें मौन गा रहीं
जी का गान यही होता है ?

चढ़ने में वर्षा-सी होती
गिरने में वर्षा होती है।

क्या गन्धायमान पाया है भाग्य-
बहुत ईर्ष्या होती है ?



६९

इन फूलों की झूलन देखो !
वन-प्रान्तर एकान्त देश मे
हरियाली यह फूलन देखो !

पानी दे, पूछे बढ़ने पर
ऐसी कहाँ यहाँ पर मालन
मन्द मलय आता है वह ही
प्राण दान देता मनभावन !

जगल मे मगल होता है
जब डालियाँ मुकुट पर आतीं
अगम अछूते शिखरों तक पर
यह बयार है शोर मचाती ।

रग-बिरगे फूलों से
सज उठीं डालियाँ गरबीली
रग - भरी के लाल - लाल
नीली - नीली, पीली - पीली ।

कुसुम-कुसुम गर्वोन्नत है पर
अन्धड़ में उन्मूलन देखो !
इन फूलों की झूलन देखो !

पत्तों को कौतुक होता है
फूलों में सुगन्ध भर आती
घास कह रही थी, हरियाते—
हम, क़ुरबानी इनमें आती !

ऋतुओं के मादक प्रहार में
अभिसारिनियों डोल रही है
पतझड की नीरवता लेकर
राग सोहनी बोल रही है।

रथारूढ़ हो गगन पन्थ से
वायु आ रहा धीरे - धीरे
कहता है झर मत अलबेले
मै जीता हूँ तू भी जी रे।

विन्ध्या में बहार आयी है
दौड नर्मदा गुण गाती है
फूल मिले जाते धूली में
उनको रोक नहीं पाती है।

सिर चढ़ कर नीचे गिरने में
फिर उठने की हूलन देखो।
इन फूलो की झूलन देखो।



७०

यादों की नीली बगिया में हँसते देख लिया !

अलग-अलग भी मिलकर भाये
गगन देश में भर-भर आये,

किसके प्राण करोगे व्याकुल, ज़ालिम लेख लिया !
यादों की नीली बगिया में हँसते देख लिया !

एक-एक कर आते-जाते
प्रति समष्टि को व्यष्टि बनाते,

नभ में दूरी पर चलने का मार्ग सुरेख लिया !
यादों की नीली बगिया में हँसते देख लिया !

किसके घाव मसोस उठे है
मौन आज, सह रोष उठे है,

गीता के गायक ने चुप छलिया का भेख लिया !
यादों की नीली बगिया में हँसते देख लिया !



७१

इस विध, कब चढ़-चढ़ गिर पाया है प्यार फूल !
तुम पीले पडे, गिरे, सूखे, बीमार फूल !

कोई कैसे मानें तुमको तरु-लता अग
तुम ले-ले आओ, अखिल सृष्टि के सभी रग !

तुम शिर पर झूले मालिक के क्या गर्व हुआ
ऊपर तक चढ़ना, बगियाओं में पर्व हुआ !

नीचे गिरतों ने सबने हाहाकार कहा
ऊँचे उठतों को मौसम, प्रकृति, बहार कहा ।

तुम उठते हो, कितना आँखों का मन लोभा
तुम गिरते हो, चढ़ती की यह न परम शोभा ।

चढता है चन्द्र कि चटक चाँदनी देता है
कितने जग के सन्ताप-ताप हर लेता है ।

तुम छाओ, भौरे गायें तुम्हारा सामगान
यह गिर पड़ने की कौन तुम्हारी बुरी बान ।

मानव से उठ कर, चढते हो अनहोनी-से,
क्या गिरते हो दुनिया की आँख-मिचौनी से ?



७२

डाले है सूरज ने कपडे किरणों की दीवारों पर
साँझ हुई तब ले जायेगा, तह कर बन्दनवारों पर।
तुम सूरज से कहना, मेरे साथ बडी-सी पलटन है
डरता हूँ उजियाले मे, क़ैदी हूँ, कैसी अडचन है।

आज कल्पनाएँ पो-पो कर किरण-बालिका मचल पडी
धारी वाला ओढ़ दुपट्टा, नदी किनारे फिसल पड़ी।
कौन खींचता है किरणों को? क्षितिज? रहा वह स्थिर बेचारा
जिसके दोनों ओर दृगों का पन्थ और आफ़त का मारा।

सूँघ-सूँघ कर पवन किसे दे रहा गगन तक गन्धवाहिनी
आँखों की भूखो ने छोडा; क्या करने आयी सिपाहिनी?
बिना फूल के फूल उठो तुम गन्धों को यों करो प्रवाहित
तो जानें, तुमको पूछेगा कौन अपरवश मदता मर्दित?

कहता रहा समर्पण मेरा दिलवर है मन्दिर के अन्दर
गन्धें कहती थीं, बहती है, पूजा के हित हम नित घर-घर।



७३

सुन रहा हूँ प्रिय तुम्हारे मौन का सवाद
चन्द्रमा से झर रही प्रतिक्षण तुम्हारी याद।
फूल से सकेत उभरे, पत्तियों से गान
सूर्य-किरणों तेज उतरा, जूझ उट्ठे प्राण,
पवन के हिन्दोल सावन गा उठा मल्हार
अँगुलि इकतारा तुम्हारा बाँटता है प्यार।
प्यार बाँटे भूमि पर हर रोज़ ये आकाश
आ रही है, वायु की लहरों तुम्हारी बास।
कौन तुम इतने हठीले-से सजीले मौन
बरसता आकाश, भू हरिया उठी, वन-भौन,
जामुनें गदरा उठीं लख भूमि में स्वर-भार
छा गया प्राणों गगन तक विवश हाहाकार,
देख पाऊँ किस तरह रूपसि प्रकृति का रूप
बिन्दुएँ बिजली फटकतीं, मौन है नभ-सूप,
कल्पना है वस्त्रहीना, बेबसी के द्वार
और प्रतिभा बन गयी है मृदुल वस्त्र-किनार,
आ गये, वे आ गये, किरनें लिये नभ-देश
श्याम-घन आसन बना, उठते प्रणय-सन्देश,
साँवली पड गयी रजनी, हुई ऊषा लाल
चमक उट्ठा गोपिकाओं का मृदुल नभ-भाल
बूँद में उसकी बँसुरिया कर रही व्यापार
रही हो बड़-भागिनी भू, हरिया रहा ससार।



७४

समय नापते-से हरियाले झाड है
नदी किनारे उठती हुई उभाड़ है।

वायु-वेग पर डाल-डाल का झूलना
ऊँचों का नीचे घासों को चूमना,

नदिया में फैली-फैली-सी रेत है
खरबूजों में बनता-सा संकेत है,

कितनी अंगुलियाँ-सी तोड़ीं डाल ने
कंकालों को बना-बना कर काल ने—

कहा, ज़रा लहरो झूमो, हरियाओ तो
बरसाने में आज बरसते गाओ तो!

यह समीर यमुना-तट ही का गान है
यह नवीन प्राचीन अलख पहचान है,

काँधों पर गिरती उठती अठखेलियाँ
हिलती-डुलती-सी हरियाली वेलियाँ,

किसी अजानी अँगुली के अनुराग सी
पानी में उठ-उठ आती-सी आग-सी,

वृन्दावन में झूल, तिल के ताड़ है
समय नापते-से हरियाले झाड़ है।



७५

तरुण आज तरुणाई बौरी
खेतों में तिनकों की ओटें
चल चल पगडण्डी सूनी है
हम अपनी बाटो से लौटें ।

किरण-किरण से हँसकर छन्दों
गूँज उठेंगी गलियाँ
बनकर फूल बिखर आयेंगी
यहाँ-वहाँ से कलियाँ !

तू मत छू, छू जाने-जैसा
बचा न मेरे पास
गन्धों की दुनिया का मालिक
बैठा निपट उदास !

भली न लगती गंगा-जमुना
सागर के रुख़ भगती
सीमा आज समुद्रों में
तनकर ऊँची-सी लगती ।

रूठे मन के सभी इरादे
चल अपने वृन्दावन लौटें !
तरुण आज तरुणाई बौरी
खेतों में तिनकों की ओटें !



७६

गगन देश में पहन वायु का लॉबा चोगा
एक पाँव पर खड़े शैल के तरु-पन्थी-से
कहो—डालि के झूले दो, हरियाले ! गाओ।

पत्तों के परखे झलती-सी सूर्य-किरण
कितनी गुम्नाम उजाला कर-कर देती है
अचला कितनी चचला, हरी निज पहरन में
किरनों का उजियाला गूँथे लेती है।

ये नम्र फुदकते जादूगर, ये वन-पछी
डालों पर डोलें बोल रहे हैं शाश्वत धुन !
तुम इतने पीछे नहीं पडो किरणोंवाले
यह वन-प्रान्तर ले कहीं हमारी बात न सुन ?

आ गयी लौटती यमुना के कछार से वह
वंशी की धुन, साँवरिया के मन की बोली
राधे लौटो, नँदनन्दन ढूँढ़ रहा तुमको
अर्पित होते आकर्षण ने थैली खोली।

■

७७

तुम चुप-चुप आ जाना साथी !

गिरि-शिखरों को झुका-झुकाकर
आँखों मे मनसूबे भर कर
प्राणों को सहलाना साथी !
तुम चुप-चुप आ जाना साथी !

मन के अध पतन पर क्षण-क्षण
अगुलियॉ दिखलाना साथी
कॉधों तक बढ़-चढ़ आओ तब
इतना बोझ उठाना साथी !

दिन में किरणों चरण धुलाना
रातो में मुसकाना साथी !

बिजली गिरे कि वर्षा उतरे
या कसकर जाडा थर्राये
तुम ढोलक की थापों पर उठ
रोज कजलियॉ गाना साथी !

हरी फसल जब-जब बल खाये
खडे-खडे इतराना साथी
नयनों के सैनों में आकर
यह घर-द्वार बसाना साथी !
तुम चुप-चुप आ जाना साथी !



७८

फैली आज सुगन्ध खूब, सस्ती हो आयी
गूँजों में गुँथ गयी, फैल, मस्ती हो आयी !
इतना विस्तृत, इतना फैला
इतना उज्ज्वल, यह मटमैला
छाया हरियाली का मेला !
बियाबान की छटा आज बस्ती हो आयी !
गुंजारों में गुंथी, फैल, मस्ती हो आयी !
शहद बिना मधुरे गाते हैं
नभ से वन तक छा जाते हैं
उड़ते हैं, गन्धें लाते हैं;
बिन पंखों उड़ रही हवा सस्ती हो आयी !
गुंजारों में गुंथी, फैल, मस्ती हो आयी !
मधु क्षण आज दिवस हो आये
बिना कान ही कान लगाये
अग जग दौड़ रहे मन भाये;
आर-पार कर गन्ध बिना कश्ती हो आयी !
गूँजों में गुँथ गयी, फैल, मस्ती हो आयी !
नयन बिना ही खोज रही यह
सपनों के जो मृग भागे हैं
नहीं जानती, दौड़ रही यह
मधुराई कितनी आगे है ?
बिन पूँछे नागन-सी यह कसती हो आयी !
फैली आज सुगन्ध खूब सस्ती हो आयी !

ब

८०

भोली पत्ती क्या जाने तू लज्जा किसे कहा करते है
गुच्छ-गुच्छ जब भर-भर आव तब यों रोज़ बहा करते है !

पीली-पीली हो जाती है, भर जाती है, गिर पडती है
सब ऋतुओं को झेल-झेल कर, फिर किस बूते पर बढ़ती है ।

ऊँचे पर उठते मिलते है तेरे गन्ध वाहिनी, रस्ते
दल-दल में गन्धों की तह कर किसने बाँध दिये ये बस्ते ?

फूलों के यों मुकुट चढ़ाये, फलस्तनों को यों लटकाये
रोज़ गिल्हरी-सी चढ़ती बदनामी को यों नाच नचाये ।

उतर-उतर आते सुगन्ध-कण, बिखर-बिखर उठते गौरव-धन
मानो घायल तन पर छाया रिस-रिस कर मर्दित अपनापन ।

बिन पाँखों गन्धों के पंछी दायें-बायें खेल रहे है
रस के झुक झुक आये विषघट, हिल-हिल किसको ठेल रहे है ?



८१

सिर पर पाग, आग हाथों में
रख पानी का घडा
जवानी, देख कि प्रियतम खडा।

मटर इसी पर झूल उठी है
सरसों कैसी फूल उठी है
गगा इसकी छवि विलोक कर
सीधा रस्ता भूल उठी है।

श्रम, तेरे मन्दिर का एक
पुजारी कितना बडा ?
आज अपनी पर आये खडा!
सिर पर पाग, आग हाथों में
रख पानी का घडा
जवानी, देख कि प्रियतम खडा!

सरजू इसे राम कहती है
यमुना घनश्याम कहती है
ग्रामीणों की टोली, पागल
इसको राम-राम कहती है!
कला! कल्पना से कह इस पर
वन्दनवारें चढा!
सफल कर जीवन यह बेगढा!
सिर पर पाग, आग हाथों में
रख पानी का घडा
जवानी, देख कि प्रियतम खडा!

उठती हुई जवानी इसकी
कितनी ताने टूट रहीं
इसकी अमर उमर दुनिया में
अनुपम रहीं, अटूट रहीं।

रस, कि राग का विष इससे
मत माँगो यह अलमस्त ,खड़ा !
सिर पर पाग, आग हाथों में
रख पानी का घड़ा
जवानी, तेरा प्रियतम खड़ा !

■

८३

क़िरन-क़िरन-बकरियाँ उतर कर
वन-प्रान्तर बाँहों में भर कर
कभी टेकड़ी, कभी खन्दकों
तरु-तृण को क्षण-क्षण चर-चर कर;

तरु-तृण गण के उठे शीश ये
छूवें धीरे-धीरे !

उठा अरुणिमा की दीवारें
ये प्रकाश वन तन-मन हारें
कितनी-सी इनकी ठकुराई
भूमि-गगन आरती उतारें;

थकी-थकी ये रोज़ साँझ लख
ऊबें धीरे-धीरे !

ये उठने का वृत-मत-धारिणि
वन-घन-मन की कुंज-विहारिणि
आया देख साँवला सुन्दर
ये ललचीली सरबस वारिणि

देख अन्त अँगना गगन में
डूबें धीरे-धीरे !



८४

लहर-लहर तेरे गुजन पर कर अपनी मनमानी,
तेरी गूँजों सींच दिया किसने बेला का पानी !

किसने वृक्षों पर नन्हें-से बिछा-बिछा महताब,
फेंक दिये है, गिन-गिन कितने फूले हुए गुलाब !

कौन, खेल कर आँख-मिचौनी कलियो में रगीन,
बोल-बोल बँधता जाता है उन बन्धनों प्रवीण ।

मैने सोचा नहीं गीत में झरता कोई व्रण है,
मै क्या जानूँ, पुष्पहार से सजा बिदा का क्षण है !

मै बोला, कलियो का बध हो गया हँसी के हँसते,
बाग़ उजडता, तब हारों से उनके घर है बसते ।



८५

चोरल[1] एक

चढ़ चलो कि यह धारो की शोभा न्यारी
सागौन-वनश्री, सावन के बहते स्वर,
पाषाणों पर पखे झल-झल ढोलित-सी
नभ से बातें करती बैठी अपने घर।

सन्ध्या हो आयी तारे पहरा देते
इसके अन्तर को छविधर घहरा देते।
ये बढ़ी लाल चट्टान नुकीली ऐसे
गिरिवर अविन्ध्य को विन्ध्य कहें भी कैसे।

'चोरल' की दौड़ें, क्या छू लें, क्या छोड़ें
इस राजमार्ग पर अपने वस्त्र निचोड़ें।
पगडण्डी पद्—मखमलिया है, बाँकी है
क्या प्रकृति-वधू, स्वर भरे इधर झाँकी है?

डालों पर, पंछी जैसे कुछ गाने में
आ रहा मज़ा, पथ भूल-भूल जाने में।
ऊँचे वट देखें या नीचे की दूबें
भूले भटके भी यहाँ न कोई ऊबें।

मलयज मन्दारों उलझ छिया-छी खेलें
वन्दनवारें बन उठीं वनों की वेलें।

---

१ विन्ध्यके एक बहुत सुहावने झरनेका नाम है, जो बढ़कर नदी हो गया है।

पंचम के स्वर, उड़ता सगीत सँभाले
सारस दल लाँघे वन्य-प्रान्त उजियाले।

मानो नभ के आँगन में खेल बिछाकर।
गा रहे गीत, उड़ हौले से अकुलाकर

क्या महफिल आज लगी, चिड़ियों को देखा?
डालों पर अपनी हरी खींच कर रेखा

चिलबिल-चिलबिल-बस चैन कहाँ, कैसे हो,
फुदक साँस, उड चली, तुम्हारी जय हो!

दो

चोरल है।
ग्वाले ग्वालिन है गायें है
क्या उन्हें देखने मेघ ख़ूब छाये हैं?

इस वन-रानी पर गगन द्रवित हो आया
हँस-हँस कर शिर पर इन्द्र धनुष पहनाया।

स्तन से मीठी, यह मस्त चाल गरबीली
हँसी, शुभदा, श्यामला, लाल यह पीली।

पूछें इन पर बन चँवर कि डोल रही है
राजत्व प्रकृति इन पर रँग ढोल रही है।

वह आम्र-डाल पर कोयल कूक उठी है
मधुराई वन-वैभव लख विवश लुटी है।

जब गायें लगतीं सन्ध्या में ग्वालिन-घर
जब तालें दे वे झरना, बूँदों के स्वर,

अँगुलियों की परियाँ क्षण आती-जातीं
मटकियों दूध, अपने घर वे पा जातीं।

छोटे से ग्वाल-किशोर यशोदा-माँ के
ये माँग उठे है दूध गीत गा-गा के।

छवि निरख-निरख कह उठी विन्ध्य वन-रानी
तुम "दूधों न्हाओ, पूतों फलो" भवानी!

तीन

तुम सँभल-सँभल उतरो प्रिय पगडण्डी से
कुछ इधर-उधर जो किया कि ढुलक पड़ोगे!
यह प्रकृति-कृति या अगम मुक्ति का घर है
यह नया-नया है जितना और बढ़ोगे!

तट चोरल के नटिनी-सी तटिनी जाती
यह राग कौन-सा कुशल निम्नगा गाती?

ऊँचे चढ़ाव, नीचे उतार, दृग मींचे
गिरि से गिरकर गा उठी गोद को सींचे!

चट्टानें चुभ आयीं कोमल अगों में
आ गयी विकृति, विधि रचे विविध रगों में।

गिर पड़ी गगन से, रोती है, समझा ले
इसकी माँ से कह दो चट गोद उठा ले।

यह पत्थर की चट्टानों पर अलबेला
विधि-हरियाली पर लगा रग का मेला

होनी वन, अनहोनी छवि ताक रहा है
फूलों की आँखों निज कृति झाँक रहा है।

फूलों के मुकुट लिये डालों की परियाँ
शृंगार कर रहीं हिलती-सी वल्लरियाँ।

मालव का कृषक सँभाले काँधे पर हल
अनुभव करता खेतों पर बैलों का बल।

किस अजब ठाठ से जाता है मस्ताना
वैभव इसके श्रम पर बलि है, अब जाना।

८६

माटी से उठ कर आता-सा अनुराग
जब फूल-फूल बनता कलियों का भाग,
तब मुझको मिलते, आते मेरे चोटे
संकेत भेजते वायु और सन्नाटे।

मैं चल पडता हूँ, कलियों के मधु-गाँव
हौले से रखता हूँ, गन्धों पर पाँव
मैं काला, वे उजलीं भरपूर सुगन्ध
गुन-गुन कर ढूँढ़ रहा उनका अनुबन्ध।

ग्रन्थों में मुझपर क्या लिक्खा क्या जानूँ
पन्थों में क्या बीती कैसे पहचानूँ!
मैं उन पर गुन-गुन करूँ और वे डोलें
उनकी पखुडियाँ मेरी बोली बोलें।

मैं नहीं जानता, बीत गयीं सो रातें
मैं नहीं जानता, कल-किरणों की घातें,
उनकी मधु-गन्धें निरख-निरख छू जाना
मैं मलय-गन्ध पर सीखा गूँज सजाना।

यह मलय और वह माटी बस क्या कहने
निर्मात्री दोनों है आपस में बहनें,

इनकी गोदों ही में कलियाँ हिलती हैं
खिलती हैं, मुझको वे हाज़िर मिलती है,
गूँजों में भर-भर अर्पण अतल-वितल में
मैं रख-रख आता उनके चरण-कमल में।

बेले हों, तरु हों, माटी के सब जाये
कलियों के घर जाता हूँ बिना बुलाये।
कलियों का आँचल ही मेरा ईश्वर है
मधु-गन्धों हिलता-डुलता प्रभु-मन्दिर है।

जग के इस सिकुडे पाप-पुण्य से ऊपर
गूँजें निर्माण क्रिया करतीं मेरा घर।
ऊँचे उडते, जिस-जिसने मुझको चीन्हा
वे बोले, प्यारा है मिलिन्द मधु-भीना।



८७

पचमढ़ी का 'विग फाल' देख कर

छुमक-छुमक उठते हो ज़ालिम, लहर-लहर लेते हो
शीतलता की तारक-माला विधिवश हो, खेते हो।
मधुर ! टूट पड़ते हो फिर भी तुम प्यारे लगते हो
बूँद-बूँद चट्टानों पर दे मारी, यों जगते हो।

फेंक रहे हो बूँद इनने क्या अपराध किया है
कितनी ढब से, शीतलता को, इनने साध लिया है,
नाच नाच उठ पड़ी तरलता फिर झोंके खाती है
लहरें गिर-गिर पड़ती है, फिर भी लहरें आती है।

ठण्डा रक्त-स्नेह ! वसुधा पर बहा उठे हो पानी
तुम बलिदान-पन्थ के यात्री, यह धारा कल्याणी।
किसकी चरण-धूलि हो किस पर बरस-बरस छाये हो
कौन बुलावा आया है ? दौड़े-से क्यों धाये हो ?

बूँद-बूँद मोती-सी धारा क्या है नाम तुम्हारा
ग्रीष्मलोक में पन्थी सुनते पावस का स्वर प्यारा ?
तरलाई की महिमा बन कर शीतलता क्यों दौड़ी
किसके अश्रु-बिन्दुओं से करते हो होडा-होडी ?

गोरे गात, वज्र से दृढ़, तिस पर तुषार की माला
शिव के अग-अग पर शोभित गंगा और हिमाला।



८८

कैसे टॉगे है, दिन-रात घूमते है दोनों
सूरज-चन्दा बन लालटेन नभ-मण्डल में
ऊँची-ऊँची भू हुई पहाड़ों शिखरों पर
छू लेगी क्या आकाश ? देखते ही पल में

या गगन मगन होकर नीचे आता-जाता
पृथिवी से मिलने को अकुलाता बार बार
फिर दूर हुए से लगते है क्यों गगन-गान-
ये तारे, इनका कौन करेगा ऐतबार !

फूलों की मधुर सुगन्धें, तारों की चमकें
क्या कर लेतीं अभिसार निरख नभ-अन्तराल
दो कोमलताऍं क्षण-भर मिल ही जाती है
प्रभु के इस वर को समय सदा लेता सॅभाल!

ये गगन-गान चॉदनी-नर्तकी गाती है
सागर की लहरें नच उठतीं तब साथ-साथ
चॉदनी घुमाती अतल-वितल पर चमक बॉह
सागर झूमा-सा उठ-उठता है सहस-हाथ!

कितने झुक आये नीचे पर ये गगन-गीत
अब इन्हें मीत बन-बन कर कोई बहलाये
नज़रें लग जायँ न, इन भोली खिलवाड़ों को
नभ का झूला बोलो कोई कैसे पाये!



८९

पतित-पतित क्या ढूँढ रहा है
रोज़ पतित होती है गगा।
जो उठतों को झाँके तो लख–
खेतों की उभरन, हो चगा।

जो विनम्र है, सेवा-रत है
उसे पतित क्या बोल रहा है ?
जिस बन्धन सकल्प बँधे हैं
तू वे बन्धन खोल रहा है।

मैं बाहर, विदेश जाता हूँ
तब मैं विरह जान पाता हूँ।
भीतर-भीतर रो लेता हूँ,
बाहर देश-देश गाता हूँ।

साँसों के सँग आसें कस-कस
प्यार, तुम्हारे सग रहूँ मैं
तेरी ऋतु, तेरे परिवर्तन
हिमकिरीट सब साथ सहूँ मै।

कितना मैं निहाल होता हूँ
दिशा-दिशा मुसकाती है जब
किरनों के अँधियारे घर में
रोज़ सवारी आती है जब।

किरनों के सँग ऋतुएँ मुझको
रोज़ बनातीं काला-पीला

सुविधाएँ सुहाग देती है
कहीं छबीला, बडा रगीला।

वन हो, बस एकान्त सदन हो,
छेड-छाड के लिए पवन हो;
ऊपर बरस पड़ें, वे घन हों
नीचे खेल रहा-सा मन हो।

तुम जी में भर-भर आये-से
आओ, बैठो, टेर लगाओ
मैं चिढ-चिढ़ आँसू बरसा दूँ
ऐसे ज़ोर-ज़ोर से गाओ।



९०

झिलमिल तारों से बहुत दूर
खग-रव, जन-रव के बहुत पास
जब भरे खेत रच रहे खेल
जब हरी घास रच रही घास।

जब स्फुर आने-सी बार-बार
अकुर आने में होड लगे
मलयज में मानव के श्रम में
जब पहलवान-सी जोड़ लगे।

सूरज की किरणों पर चढ़ कर
जब-जब प्रभात आ जाता है
तब-तब उठते अरमानों को
खेतों का घर भा जाता है।

जड़ का, बीजों का, तृण का यह
विद्रोह अनोखा होता है
भू के विपरीत उठानो का
आलम अपने सँग होता है।

पछी उठान का गुण गाते
किरनें उठान दुलराती हैं–
वे मन्द मलय की बाँह-बाँह
हँस-हँस पहनायी जाती हैं।

उस छुपे हुए जादूगर के घर
रोज़ सवेरा होता है;
किरनें उसके गुण गाती हैं
पानी सपनों को धोता है।

जब दूर निकट आ जाता है
जब किरनें अपनी होती है,
जब गिरने की धुन लगती है,
निर्झरनी झर-झर रोती है।

शिखरों को, कौन चितेरा है –
नित नये मुकुट पहनाता है;
वन के रंगीन सिंगारों को
कब कौन बनाने आता है?

किसके रुख़ किरन डूबती है
किसके रुख़ नदियाँ जाती है
वह कौन अगम, गम्भीर, धीर
जिसके घर लहरें आती है।

उस वरणहीन को वेद गान
उस चरणहीन को सौ प्रणाम
उस वृन्दावन पर बाग-बाग
उस बंशीवट पर तान-तान।

जिसके सिर हिम का मुकुट लसित
जिसके अंगों गंगा लिपटी,
हिमनग से अमल कुमारी तक
शोभित मेरी यह पंचवटी!

इसकी गणना छत्तीस कोटि
इसकी अविदित महिमा विशाल
मेरी जननी का दिव्य-धाम
सेवा करता है अमर काल !

■

९१

सह-सह कर ऋतुओं की मारें हर क्षण हरियाना
चिर सुगन्ध तरु, गाते हो, कितना जागृत गाना !

हवा चली कि डोल उठते हो, रसना-पत्र खोल उठते हो
सधे मौन के, बँधे मौन के, मन्त्र अनन्त बोल उठते हो,
स्थिर हो गतिमय, लखते हो जग का आना जाना !
चिर सुगन्ध तरु, गाते हो, कितना जागृत गाना !

जड़ ! काँधो पर चिड़ियाँ चहकीं, डालें गन्ध-भरी-सी महकीं
फल रस-भरे, फूल मनमोहे, झूमे हैं कुछ बहकीं-बहकीं,
सब कुछ खोते हो, ख़रीदते हो कितना 'पाना' ?
चिर सुगन्ध तरु, गाते हो, कितना जागृत गाना !

यह पार्वती, पर्वती प्रभुता, यह शकर शकर यह सूली
पराधीन स्वाधीन भेद तज किसके घर का रस्ता भूली ?
यह कि दिगम्बर, यह भद्राणी, उतर-उतर घर आना-सा !
चिर सुगन्ध तरु, गाते हो, कितना जागृत गाना !

नीचे कीच, शीश पर बन्दर, विषधर घूम रहे डालों पर
फूलों पर भौरों की भन-भन, उड़न डिठौने-सी गालों पर,
फिर भी शीतल रहने का तरु भेद बताना !
चिर सुगन्ध तरु, गाते हो, कितना जागृत गाना !



९२

तेरे काँटे तेरे फूल
रैनी, तेंदू, बेर-बबूल।

वे ऊगे, वे बढ़े अधेड़
तेरे काँटों वाले पेड़।

इनका फैला-सा घर-बार
राजमुकुट-से फूल पसार।

इन्हें देख हरषाता हूँ मैं
बिना कहे ही गाता हूँ मैं।

भूल-भूल जाता हूँ मौन
मुझे बुलाता जब सागौन।
दूबें करतीं मुझे मगन
पहन ओस दूबों का धन।

वह बेतवा पुकार रही है
पचमढ़ी पथ हेर रही
सोना माटी की टेकड़ियाँ
स्वर्ण-किरण धन पेर रहीं।

किसका ग्राम, अरे किसका घर
बोल उठा है पत्थर-पत्थर।



४५, ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीणमहाणसाणं ।

मन्त्र—ॐ नमो भगवती क्षुद्रोपद्रवशान्तिकारिणी रोग-कष्टज्वरोपशमं शान्तिं कुरु-कुरु स्वाहा ।

फल—ऋद्धि मन्त्र की आराधना से और यन्त्र पास रखने से महान से महान भय मिटता है, प्रताप प्रकट होता है, रोग नष्ट होता है और उपसर्ग आदि का भय नहीं रहता ।

राज-पुत्र हँसराज की कथा

मालवा प्रान्त में उज्जैन नगर बहुत मनोहर और विस्तृत है । वहां किसी समय राजा नृपशेखर राज्य करते थे । उन्हें रानी विमलमती के शुभ संयोग से एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई । बालक जन्म से ही बहुत रूपवान और सुशील था, उसका नाम हँसराज था । जब हँसराज सात वर्ष का हुआ तो पिता ने पण्डित मनोहरदासजी की सेवा में विद्याध्ययन के लिये उसे भेजा और विद्वान् पुरोहितजी ने बड़े चाव से उसे विद्याभ्यास कराया ।

गीतिका—सूत्र शास्त्र सिद्धान्त ज्योतिष, सकल याहि पढ़ाई है ।
व्याकरण अमर निघण्टु पिङ्गल, छन्द बद्ध सिखाई है ॥
अरु बाण मोचन पर बचावन, रन भिरन जोधन तनी ।
जल तरण पर के मन हरण, सो दई विद्या अति घनी ॥ १ ॥

बालक हंसराज विद्या में प्रवीण होकर घर आया ही था कि दैवयोग से उसकी पूज्या माता विमलमती का स्वर्गवास हो गया। इस वियोग से पिता-पुत्र दोनों अत्यन्त दुःखी हो गये। वे बहुत रोये, बहुत आर्तध्यान किये। अनन्तर राजा नृपशेखर ने अपना दूसरा विवाह कर लिया।

राजा की इस नव्य भार्या का नाम कमला था, परन्तु वह स्वर्गीया पत्नी विमला के सदृश नहीं थी। वह बड़ी कुटिल स्वभाव और निर्दयी थी। समय पाकर कमला रानी ने भी श्रीचन्द्र नाम का पुत्र प्रसव किया। योग्य होने पर राजा ने श्रीचन्द्र को भी विद्याध्ययन कराया। परन्तु कमला के हृदय में बड़ा ही द्वेष-भाव रहता था। वह यही सोचा करती थी कि यदि हंसराज मर जाता तो श्रीचन्द्र के रास्ते का बड़ा कंटक टल जाता।

एक समय राजा नृपशेखर दिग्विजय के लिये निकले और हंसराज को कमला रानी की देख रेख में छोड़ गये। अब रानी कमला को अपने मन की अभिलाषा पूरी करने का अच्छा अवसर मिल गया। उसने भोजन में विनाई मिला कर हंसराज को खिला दिया, जिससे स्वल्पकाल ही में हंसराज का शरीर पीला पड़ गया। रग रग में जहर का असर हो जाने से वह नितान्त अशक्त हो गया और वात, कफ, खांसी आदि रोगों से पीड़ित रहने लगा। राजकुमार अपनी विमाता की यह करतूत समझ गया, पर उससे वह कह भी क्या सकता था और कहने से लाभ भी क्या था? निदान, कुटिला कमला के कुसङ्ग में रहना उचित न समझ कर वह घर से निकल पड़ा और बड़ी कठिनाई से नागपुर पहुँचा।

वहा के राजा मानगिरि के कलावती नाम की एक अति सुशिक्षिता और रूपवती कन्या थी। एक दिन राजा ने पुत्री से पूछा—बेटी! तुम हमारे घर में सुख चैन से रहती हो, सो हमारे प्रसाद से या अपने भाग्य से? इस पर बुद्धिमती कलावती ने उत्तर दिया—

चौपाई—काहु को कोउ समरथ नाह, देवे को यह पृथिवी माह।
जैसो करम कियो जो होय, तैसो फल निपजावे सोय॥ १॥

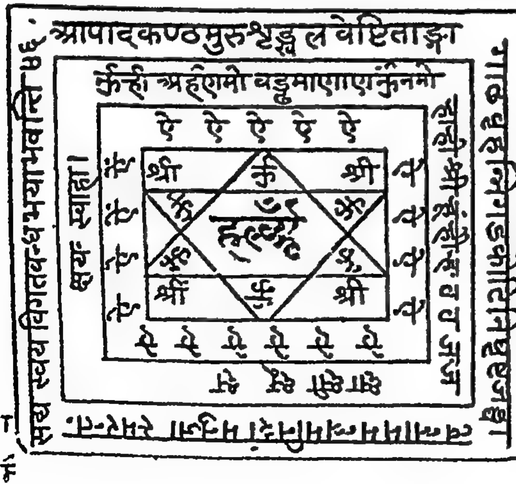
कलावती के इस स्पष्ट उत्तर पर राजा बहुत कुपित हुए। उन्होंने महा रोगी हँसराज को बुलवा कर उसके साथ सुकुमारी कलावती का विवाह कर दिया और दोनो को घर से निकाल दिया। वे दम्पति वन में विचरते-विचरते एक दिगम्बर मुनिराज के पास गये और उनसे रोगमुक्त होने का उपाय पूछा। कृपालु मुनिराज ने हँसराज को "उद्भूत भीषण" आदि श्री भक्तामर का ४५ वा काव्य सिखा दिया। उन्होंने सात दिन तक योगासन मे बैठ कर मन्त्र की आराधना की, जिसके प्रसाद से वे बिलकुल नीरोग और कामदेव सदृश रूपवान हो गये।

दिग्विजय कर के जब उज्जैन-नरेश महाराज नृपशेखर वापिस अपनी राजधानी में आये तो कमला रानी से हँसराज के विषय में पूछा। कमला ने उत्तर दिया कि आपने उसका विवाह नहीं किया था, इसलिये किसी कुलटा को लेकर कहीं चला गया है। राजा नृपशेखर ने हँसराज की खोज करने के लिये सब जगह किंकर भेजे। उनमें से एक यह समाचार लाया कि वे नागपुर के एक बगीचे में है और एक रूपवती स्त्री उनके पास है। यह सुन कर कमला रानी का चित्त खिन्न हो गया। राजा ने मन्त्री को नागपुर भेजा। यहा नागपुर नरेश मानगिरि को पता लगा कि हँसराजजी नीरोग हो गये हैं और वे राज-पुत्र है, तब ये उनसे

मिलने आये और पुत्री कलावती से क्षमा प्रार्थना की। जब हंसराजजी सकुशल सपत्नीक उज्जैन पहुंचे तब राजा नृपशेखर को अपनी स्त्री की निकृष्ट क्रिया का ज्ञान हुआ, इससे इन्हें संसार से वैराग्य उत्पन्न हो गया। वे प्रिय पुत्र हंसराज को राज्य भार सौंप कर मुनि हो गये और आयु के अन्त में मरण कर स्वर्ग गये।

आपादकण्ठमुरुश्रृंखल वेष्टितांगा,
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥ ४६ ॥

सारा शरीर जकड़ा दृढ़ सांकला से, बेड़ी पड़े छिल गई जिनकी वे जांघ।
त्वन्नाम-मन्त्र जपते-जपते उन्ही के, जल्दी स्वय झड़ पड़ी सब बन्ध बेड़ी ॥ ४६ ॥



४६ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाणं।

मन्त्र—ॐ णमो ह्रां ह्रीं श्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः ठः ठः जः जः क्षां क्षीं क्षूं क्षः स्वाहा।

विधि—ऋद्धि मन्त्र जपने और यन्त्र पास रखने तथा उसको त्रिकाल पूजा करने से कैदखाने से छुटकारा मिलता है। राजा आदि का भय नही होता। विधान प्रतिदिन १०८ वार जाप करना चाहिये।

भावार्थ—हे जिनेश ! जिनके शरीर पाव से लेकर गले तक वडी-वडी साकलों से जकडे हुए हैं और विकट बेडियों की धारों से जिनकी जङ्घाएँ अत्यन्त क्षत-विक्षत हो गई हैं, ऐसे मनुष्य भी आपके नाम मात्र स्मरण करने से अपने-आप बन्धन मुक्त हो जाते हैं।

राज-पुत्र रणपाल की कथा

आर्यावर्त के प्रसिद्ध नगर अजमेर में किसी समय राजा उरपाल राज्य करते थे, वे वडे न्याय-शील और धर्मात्मा थे। पुण्योदय से उन्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई, उसका नाम उन्होंने रणपाल रक्खा था। राजा उरपाल ने रणपाल की शिक्षा पर अच्छा ध्यान दिया था। उसे दिगम्बर जैन मुनिराज की सेवा में भेज दिया था और सकल जैन-शास्त्र तथा श्री भक्तामर मन्त्र-यन्त्र का खूब अध्ययन कराया था।

एक समय अजमेर के समीपवर्ती राज्य वासपुर के नरेश ने पत्र द्वारा सूचना दी कि जोगिनपुर का बादशाह सुलतान आप पर चढाई किया चाहता है, आप शीघ्र ही युद्ध की तैयारी करें। यह समाचार सुन कर राजा उरपाल वडे ही क्रोधित हुए और राज-सभा में घोषणा की कि, अपने यहा कोई ऐसा शूर-वीर है क्या, जो सुलतानशाह को जीवित पकड ला सकता हो ? यह सुन कर राजकुमार रणपाल ने अपनी भुजा उठा कर उत्तर दिया कि इस सहज काम के लिये आपका यह दास तत्पर है। रणपाल का ऐसा साहस देख कर अजमेर-नरेश बहुत प्रसन्न हुए और जोगिनपुर पर चढाई करने की आज्ञा दे दी।

कुमार रणपाल वडी भारी तैयारी के साथ सुलतानशाह पर चढाई की और दोनों तरफ की सेना में घोर-सग्राम हुआ। अन्त में शाह-सुलतान

ने रणपाल को पकड लिया और वन्दीगृह में डाल दिया। जब दो दिन और दो रात बीत गये, तब तीसरी रात्रि को कुमार रणपाल ने 'आपादकण्ठ' आदि श्री भक्तामर का ४६ वा काव्य का स्मरण किया, तब तत्काल ही देवी प्रगट हो गई और उसके बन्धन खुल गये। सवेरा होते ही कुमार रणपाल राज-दरवार में जा पहुँचे।

इन्हें राज दरवार में आया देख शाह सुलतान ने सिपाहियों को खूब डाट सुनाई और पूछा कि इन्हें किसने छोड दिया है और किसके हुकुम से छोडा है? उन्होंने विस्मित होकर उत्तर दिया—जहापनाह! यह तो कोई चमत्कारी दीखता है, नहीं तो किसकी ताकत, है, जो हुजुर की परवानगी के विना बाहिर कदम रख सके? तब सुलतान ने स्वयम् अपने हाथ से कुमार रणपाल को खूब कस कर बाँधा और जेलखाने में सख्ती से बन्द कर दिया।

जैसे ही रात्रि के १२ बजे का घण्टा बजा कि रणपाल ने पुन' मन्त्र का स्मरण किया, जिससे उसके सब बन्धन पुन' खुल गये। वे एक पलङ्ग पर लेट गये और दो देविया उनकी सेवा करने लगीं। सिपाहियों ने सुलतानशाह को यह दृश्य एक झरोखे में से साफ दिखा दिया। अब तो सुलतान बहुत घबराया और कुमार को राज्य-सभा में बुला कर उनकी खूब सेवा सुश्रुषा की। अन्त में बार-बार क्षमा प्रार्थना कर बड़े सन्मान के साथ उन्हें अजमेर पहुँचा दिया। कुमार रणपाल ने अजमेर पहुच कर सब वृत्तान्त पिता को सुनाया, जिसे सुन कर उन्हें पहिले तो विषाद और पीछे हर्ष हुआ। उन्होंने पवित्र जैन-धर्म की बडी प्रशसा की और अपना श्रद्धान और भी दृढ किया।

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-
संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥ ४७ ॥

जो बुद्धिमान इस पुस्तक को पढे है, होके विभीत उनसे भय भाग जाता ।
दावाग्नि-सिन्धु अहिका, रण-रोग का, मृगराज का, मत्तगज का, सब बन्धनो का ॥४७॥

भावार्थ—हे प्रभु ! जो विद्वान् मनुष्य आपके इस स्तोत्र का अध्ययन करता है, उसके मत्त हाथी, सिंह, अग्नि, सर्प, संग्राम, समुद्र, महोदर रोग और बन्धन आदि से उत्पन्न हुआ भय मानो डर कर ही शीघ्र नष्ट हो जाता है ।

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-
ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाणं ।
भयहर भयहर भयहर भयहर भयहर

ॐ	न	मो	भ

४७ ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाणं ।

मन्त्र—ॐ नमो ह्रा ह्री ह्रू ह्रः क्षय श्री ह्री फट् स्वाहा ।

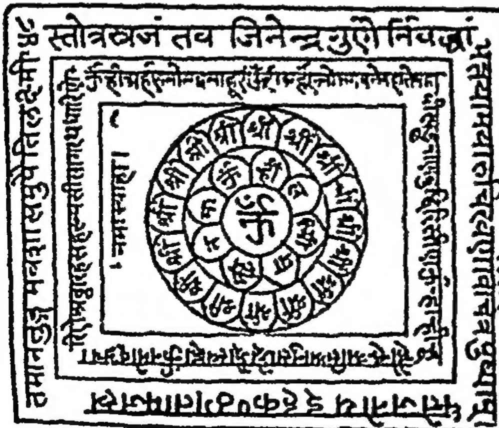
विधि—१०८ बार मन्त्र को आराधना कर शत्रु पर चढ़ाई करनेवाले को विजय-लक्ष्मी प्राप्त होती है । शत्रु वश होता है, शत्रु के शस्त्रो की धार बेकाम हो जाती है, बन्दूक की गोली बरछी आदि के घाव नही हो पाते ।

स्तोत्रस्रजं तवजिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया विविधवर्णविचित्रपुष्पाम्
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं
तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

तेरे मनोज्ञ गुण से स्तवमालिका ये गूँथी प्रभो। विविधवर्ण-सुपुष्पवाली—
मैंने, सभक्ति जन कण्ठ धरे इसे जो सो मानतुङ्ग सम प्राप्त करे सुलक्ष्मी ॥ ४८ ॥

भावार्थ—हे जिनेन्द्र! मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक अपने गुणों की गूँथी हुई सुन्दर अक्षरों की विचित्र पुष्पमाला को जो पुरुष कण्ठ में धारण करता है, उस माननीय पुरुष को धन-सम्पत्ति या स्वर्ग-मोक्ष आदि लक्ष्मी अवश्य प्राप्त होती है।

४८ ऋद्धि—ॐ ह्रीं णमो सव्वसाहूणं।



मन्त्र—पठति महावीर वड्ढमाण बुद्धिरिसीणं। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं अ सि आ उ सा झ्रौं झ्रौं स्वाहा।

ॐ नमो बंभचारिणे अट्ठारह सहस्स सीलांगरथ धारणे नम स्वाहा।

विधि—४२ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार जपने से और यन्त्र पास रखने से मनोवांछित कार्य की सिद्धि होती है और जिसे अपने आधीन करना हो, उसका नाम चिन्तवन करने से वह अपने वश होता है।

श्रीप्रभुमुनि मानतुङ्ग स्वामी की कथा

सो आरतीसम जानी नेह, मानतुङ्ग मुनि की भई जेह ।
सब सो रचित पीठिका कही, कथा आदि अन्त गहगही ॥ १ ॥
काव्य सितालिस अडतालीस, सोई मन्त्र जपे मुनि ईस ।
तिन प्रसाद सब बन्धन खुले, नाना विधि के सङ्कट टले ॥ २ ॥
भोज सभा जीती सब जाय, श्रीजिनवर के मन्त्र सहाय ।
ते ही जुगल मन्त्र प्रधान, सो तुम जपौ भव्य गुण खान ॥ ३ ॥

अथ कवि प्रार्थना

जैसी भाव ग्रन्थ में लहो, सो भावार्थ निकारौ यहाँ ।
भूल-चूक मेरी जो होय, ताहि सुधारो भविजन लोय ॥ १ ॥

जरूरी सूचना—ऊपर लिखी विधियो मे से जिस विधि में वस्त्र, आसन और माला का प्रकार नहीं बतलाया है उसे नीचे की भाति समझे—

'वशीकरण' मन्त्र के साधने में वस्त्र, माला और आसन पीला लेना चाहिये ।

'मारण' में वस्त्र, आसन और माला काली चाहिये ।

'लक्ष्मी-प्राप्ति' के मन्त्र-साधन में माला मोती की और वस्त्र सफेद चाहिये ।

'मोहन' में माला मूंगा की और वस्त्र लाल चाहिये ।

'आकर्षण' में वस्त्र हरा और माला हरी लेना चाहिये ।

जिस विधि में दिशा न बताई गई हो, उसमा विधान करते समय मुख पूरब को कर के बैठे ।

यन्त्र भोजपत्र पर अनार की कलम द्वारा केशर से लिखना चाहिए ।

—सम्पादक

स्व० कविवर पण्डित विनोदीलालजी का परिचय

चौपाई—जाके राज परम सुख पाय, करी कथा हम जिन गुण गाय।
साहजादपुर शहर मंझार, रहे सदा तिनके आधार ॥ १ ॥
काष्ठा सङ्घ आदि जिन तनों, माथुर गच्छ उजागर बनों।
पुष्कर गन-गन गण में सार, जैन धर्म को परम सिङ्गार ॥ २ ॥
कुमर सेन मुनि के आश्रय, प्रगटी श्रावक धर्म सहाय।
वैश्य वंश में उन्नत महा, जैन-धर्म करुणामय लहा ॥ ३ ॥
ता परसाद महा गम्भीर, अगरवाल गुण अङ्क सुधीर।
अगर गोत्र उत्तम गुणसार, अष्टादश गोतम सरदार ॥ ४ ॥
लखन चूल है मेरी अल्प, अणख मोहि लागे ज्यों शल्य।
मिथ्यामत को नाशन हार, प्रगटी कुलकी परम सिङ्गार ॥ ५ ॥
मण्डन को परपोता भली, पारस पोता को जस चली।
दरिगह मल को सुत गुणधाम, 'लाल विनोदी' मेरो नाम ॥ ६ ॥
सम्वत् सत्रह सौं सैंताल, श्रावण सुदी द्वितीया रविवार।
शुभ दिन कथा सपूरण करी, प्रथम जिनेन्द्र तनी गुण भरी ॥ ७ ॥